सुधा बीज बोने से पहले कालकूट पीना होगा ।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा ॥

भाग २] मथुरा, २० सितम्बर सन् १९४१ [अंक ९

एक-ज्योति

(ले०—श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त 'कमलेश')

जिसका विस्तार युगों से है, परिमित है वहीं एक-क्षण में ।
वह सर्व भूतमय एक ज्योति है, व्याप्त विश्व के कण-कण में ॥
है राम, श्याम में शक्ति वही-राधा में है, सीता में है ।
वह एक विलक्षण अटल-तेज-मानस में है, गीता में है ॥
वह गिरि में है, सरिता में है, तरुओं में है, निर्जन-वन में ।
है वही योगियों के उर में, मन्दिर में, मूरति में, मन में ॥
उसका प्रतिबिम्ब विमल-विधु में, उसकी ज्वाला अङ्गारों में ।
उसकी प्रतिभा दिनकर में है, उसका प्रकाश है-तारों में ॥
उसकी उपमा-उपमान वही वह अविचल, चेतन है, सत है ।
वह स्थित है सब में समान, सब कुछ उसके अन्तर्गत है ॥

सुधा बज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

मथुरा, २० सितम्बर सन् १९४१

नायमात्माबलहीने न लभ्यः

उपनिषद् का बचन है कि—'यह आत्मा निर्बलों को प्राप्त नहीं होता।' आइए, जरा इस विषय पर गंभीरता पूर्वक विचार करें। अखण्ड ज्योति के पाठक बहुत दिनों से यह सुनते आ रहे हैं, कि मनुष्य में जो कुछ भी चेतना शक्ति है, वह आत्मा के द्वारा ही प्राप्त होती है। यह समस्त सत्ताओं का केन्द्र है। हमारी भौतिक योग्यताऐं भी उस आध्यात्मिक केन्द्र से आविर्भूत होती हैं। कोई व्यक्ति जो धनवान्, बलवान्, विद्वान्, बुद्धिमान, गुणवान्, ऐश्वर्यवान, या तेजवान् दिखाई पड़ता है, उसे यह प्रसाद जड़ शरीर से नहीं वरन् आत्मा की कृपा से प्राप्त हुए हैं। बहुमुखी आन्तरिक सत्ता का जिसने जितना और जिस प्रकार का विकाश कर लिया है, उसमें वैसी ही महत्व प्रदर्शित होता है। सच्चिदानन्द आत्मा की अपरिमित शक्ति में से जो जितना ग्रहण कर लेता है, वह वैसा ही सुयोग्य दिखाई देता है। केवल सतोगुण ही नहीं रजो गुण और तमोगुण की जागृति भी आत्म शक्ति का उपयोग लाये बिना होना असंभव है। निदान् यह मानना पड़ता है, कि जिसके पास जो कुछ है वह आत्मा का ही प्रसाद है। इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए मुंडकोपनिषद् आदेश करती है कि:—

> तमेवैकं जानथ आत्मा नमन्या
> वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतु॥

अर्थात्—'एक मात्र आत्मा को जानो, इसके अतिरिक्त और कोई बातें कदापि मत करो। सुनो! यही अमृत का सेतु-पुल है।' सचमुच आत्म शक्ति को प्राप्त करने से बढ़ कर और कोई ऐश्वर्य नहीं है। इसे यों भी कहा जा सकता है, कि आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। आत्म शक्ति के अभाव में विश्व का अस्तित्व ही मिट जाता है। जिसमें यह सत्ता जितनी प्रसुप्त है वह उतना ही दीन मलीन और दुखी है।

इस दिव्य तत्त्व को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य है, परन्तु कितने दुःख की बात है कि हम मूल को छोड़ कर पत्ते पत्ते पर भटकते हैं, फल स्वरूप जीवन यों ही व्यर्थ चला जाता है और एक भी तृष्णा को पूरा नहीं कर पाते क्योंकि मनोवाञ्छाओं को पूर्ण करने के स्थल-आत्मा की ओर ध्यान न देकर बारहसिंगा की भाँति कस्तूरी की तलाश में इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। आत्मिक सुख को छोड़ दें तो भी कोई सांसारिक सुख आत्म प्रसाद के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार तेल के अभाव में दीपक बुझ जाता है, और उसके न्यून होने पर बत्ती जरा जरा टिमटिमाती रहती है, वैसे ही आत्म शक्ति से रहित मनुष्य सब प्रकार असहाय, अभावों से ग्रसित, चिन्ताओं से व्याकुल और दास वृत्ति के साथ जैसे तैसे जीवन यापन करते हैं।

हम चाहते हैं कि क्षुद्र न रह कर महान बनें, दास नहीं स्वतन्त्र बनें और इच्छित ऐश्वर्यों का उपभोग करें। यह बातें आत्म शक्ति से सम्बन्ध रखती हैं, निश्चय ही कोई निर्बल आत्मा सुखी स्वतन्त्र और महान् नहीं हो सकता। इस लिये सब से अधिक आवश्यकता हमें इस बात की है कि आत्मा को जानें, आत्म शक्तिको प्राप्त करें। अब विचार करना

चाहिये कि आत्मा किस प्रकार और किन लोगों को प्राप्त हो सकती है ? उपरोक्त पद में स्पष्ट कर दिया है कि–नायमात्मा बलहीने न लभ्यः । अर्थात्-निर्बलों को यह आत्मा प्राप्त नहीं होता । जो आत्मा को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें बलवान बनना चाहिये ।

निर्बलता, दासता, दीनता, अकर्मण्यता, कायरता यथार्थ में सब से बड़ा पाप है । पत्थर जैसी जड़ता धारण करने वाला और अपनी क्रिया शक्ति, स्फूर्ति एवं आशा का तिरष्कार करने वाला एक प्रकार का आत्म हत्यारा है । और ऐसे आत्म हत्यारों को निश्चय ही घोर नरक प्राप्त होता है । यह नरक मृत्यु के बाद नहीं वरन् उसी क्षण से उतने ही परिणाम में प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है, जब से कि वह इन जघन्य दोषों को अपनाना शुरू करता है । ईश्वर ने हमें सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक साधन इस प्रकार के दिये हैं, कि उनका भरपूर उपयोग करने, अपने को अधिक से अधिक बलशाली बनावें । वह राजा को अपने घर में नहीं ठहरा सकता है, जिसके यहाँ थोड़ी बहुत जगह है । सड़क पर सोकर गुजर करने वाला भिखमंगा भला किस प्रकार एक राजा को अपने घर में ठहरा कर उसका स्वागत सत्कार करने का आनन्द लाभ कर सकेगा ? ईश्वर को वही प्राप्त कर सकता है, जो बलवान है, आत्म शक्ति उसे प्राप्त हो सकती है जो सशक्त है । भौतिक विज्ञानी कहते हैं कि—"प्रकृति श्रेष्ठतम का चुनाव करती है और कमजोरों को नष्ट कर डालती है ।" आध्यात्मिक विज्ञानी कहते हैं कि–निर्बलता आत्म हत्या है, ऐसे पापियों को नरक की ज्वाला में जलना पड़ता है । " बात दोनों की एक है । असंख्य जातियाँ और सभ्यताऐं निर्बलता के पाप के कारण अपना अस्तित्व खो चुकीं और भविष्य में भी जो व्यष्टि या समष्टि निर्बल होगी, वह अपने पाप का पूरा पूरा फल भोगेगी । इसलिये जो जीवित रहना चाहते हैं, जो उन्नति करना चाहते हैं, जो ऐश्वर्य प्राप्त करने के इच्छुक हैं उन्हें चाहिये कि बलवान बनें और आत्म शक्ति को प्राप्त करके सौभाग्यशाली कहलावें ।

भौतिक विज्ञान ने तामसी बल का संपादन करने की सलाह दी है । पश्चिमीय देशोंने पाशविकबल संग्रह किया है । हिंसा और छल में निपुणता प्राप्त करना बहुत निकृष्ट कोटि की बल साधना है इसका परिणाम कुछ क्षण के लिए सुखद भले ही प्रतीत हो, अन्ततः वह समूल नाश का कारण बन जाता है । उत्तम बल सात्विक बल है । हमें चाहिए कि सात्विक बल की आराधना करें । सत्य और अहिंसा के आधार पर जो आध्यात्मिक बल संपादन किया जायगा वह आसुरी बल की अपेक्षा अधिक दृढ़ और स्थायी होगा एवं उसी के द्वारा सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जा सकेगा ।

आवश्यक है कि हम न केवल शरीर से वरन् मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी बलवान बनें । कायरता और अकर्मण्यता को छोड़ कर कर्तव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हों । हीनता, दीनता, और दासता के विचारों का परित्याग करके अपने वास्तविक 'सोऽहम्' स्वरूप को जानें । जिन योग्यताओं को जीवन यापन के लिये आवश्यक समझें उनका विकास करें और एक दिन पूर्ण परमात्म पद को प्राप्त करने में समर्थ हो जावें । ऐसा पुरुषार्थ करने पर ही हम बलवान बन सकेंगे और तब आत्मा को प्राप्त करने में समर्थ होंगे ।

पाठको ! निश्चय समझो कि बिना आत्मा प्राप्त किए कल्याण नहीं किन्तु 'नायमात्मा बलहीने लभ्यः ।' इस लिए उठो, बलवान बनो–अपने को सशक्त बनाओ ।

जैसे अत्याचारी तथा न्यायी का विरोध करना परम धर्म है । उसी तरह पतितों से प्रेम रखना भी परम धर्म है ।

× × × ×

धर्मोपदेश यही है । दुष्ट को न मार सको तो स्वयं ही उसके द्वारा मरजाना ठीक है, किन्तु अत्याचार को देख कर भाग जाना तो पशुता से भी बढ़ कर है ।

प्राणियों को रचने वाला

(महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय)

हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत् की रचना इस बात की घोषणा करती है कि इस जगत् का रचने वाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्य से भरा हुआ है। जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ आदि; अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी; पसीने और मैल से पैदा होने वाले कीड़े; पृथ्वी को फोड़कर उगने वाले वृक्ष; इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारी का समागम होता है। उस समागम में नर का एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु चैतन्य अंश गर्भ में प्रवेश कर नारी के एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंश से मिल जाता है, इसको हम जीव कहते हैं।

एक बाल के आगे के भाग के खड़े-खड़े सौ भाग कीजिये और उन सौ में से एक के फिर सौ खड़े-खड़े टुकड़े कीजिये और इसमें से एक टुकड़ा लीजिये तो आपको ध्यान में आवेगा कि उतना सूक्ष्म जीव है। यह जीव गर्भ में प्रवेश करने के समय से शरीररूप से बढ़ता है। विज्ञान के जानने वाले विद्वानों ने अणुवीक्षण यन्त्र से देखकर यह बताया है कि मनुष्य के वीर्य के एक बिन्दु में लाखों जीवाणु होते हैं और उनमें से एक ही गर्भ में प्रवेश पाकर टिकता और वृद्धि पाता है। नारी के शरीर में ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि यह जीव गर्भ में प्रवेश पाने के समय से एक नली के द्वारा आहार पावे, इसकी वृद्धि के साथ-साथ नारी के गर्भ में एक जल से भरा थैला बनता जाता है जो गर्भ को चोट से बचाता है। इस सूक्ष्म से सूक्ष्म, अणु से अणु, बाल के आगे के भाग के दस हज़ारवें भाग के समान सूक्ष्म वस्तु में यह शक्ति कहाँ से आती है कि जिससे यह धीरे-धीरे अपने माता और पिता के समान रूप, रङ्ग और सब अवयवों को धारण कर लेता है? कौन सी शक्ति है, जो गर्भ में इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है? वह क्या अद्भुत रचना है, जिससे बच्चे के उत्पन्न होने के थोड़े समय पूर्व ही माता के स्तनों में दूध आ जाता है? कौन सी शक्ति है, जो सब असंख्य प्राणवन्तों को, सब मनुष्यों को, सब पशु-पक्षियों को, सब कीट-पतङ्गों को, सब पेड़-पल्लवों को पालती है और उनको समय से चारा और पानी पहुँचाती है? कौन सी शक्ति है, जिससे चींटियाँ दिन में भी और रात में भी सीधी भीत पर चढ़ती चली जाती हैं? कौन सी शक्ति है, जिससे छोटे से छोटे और बड़े से बड़े पक्षी अनन्त आकाश में दूर से दूर तक बिना किसी आधार के उड़ा करते हैं?

नरों और नारियों की, मनुष्यों की, गौवों की, सिंहों की, हाथियों की, पक्षियों की, कीड़ों की सृष्टि कैसे होती है? मनुष्यों से मनुष्य, सिंहों से सिंह, घोड़ों से घोड़े, गौवों से गौ, मयूरों से मयूर, हंसों से हंस, तोतों से तोते, कबूतरों से कबूतर, अपने-अपने माता-पिता के रङ्ग-रूप-अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते हैं? छोटे से छोटे बीजों से किसी अचिन्त्य शक्ति से बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षों तक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ी से जीवधारियों को सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों स्वादु, रसीले फलों से उनको तृप्त और पुष्ट करते, बहुत वर्षों तक श्वास लेते, पानी पीते, पृथ्वी से और आकाश से आहार खींचते, आकाश के नीचे झूमते-लहराते रहते हैं?

इस आश्चर्यमयी शक्ति की खोज में हमारा ध्यान मनुष्य के रचे हुए एक घर की ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। इसमें भीतर जाने के लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानों में पवन और प्रकाश के लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-

और प्रेम मेरा ईश्वर है।

(महात्मा गाँधी)

बुद्धिवाद द्वारा ईश्वर पर श्रद्धा नहीं कर सकता, मैं अपने लेखों द्वारा दूसरों द्धा उत्पन्न नहीं कर सकता, मैं कबूल करता रा अनुभव अकेले मुझे ही मदद कर सकता जिन्हें शंका हो, वे दूसरा सत्संग खोज करें। रा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति परे है। ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह कों की नास्तिकता भी है। क्योंकि वह अपने दित प्रेम से उन्हें भी जिन्दा रहने देता है। दय को देखने वाला है। वह बुद्धि और से परे है। हम स्वयं जितना अपने को जानते से कहीं अधिक वह हमें और हमारे दिलों ता है। जैसे कहते हैं, वैसा ही वह हमें है, क्योंकि वह जानता है कि जो हम र कहते हैं। अक्सर वही हमारा भाव होता और कुछ लोग यह जान कर करते हैं; छ अनजान में। ईश्वर उनके लिये एक व्यक्ति ो उसे व्यक्तिरूप में हाजिर देखना चाहते हैं, सका स्पर्श करना चाहते हैं, उनके लिए वह धारण करता है। वह पवित्र से पवित्र तत्व न्हें उसमें श्रद्धा है, उन्हीं के लिए उसका त्व है। सब लोगों के लिए वह सभी चीज हममें व्याप्त है और फिर भी हमसे परे है। योंकि वह पश्चाताप करने के लिए मौका देता नेयाँ में सबसे बड़ा प्रजातंत्रवादी वही है। वह बुरे-भले को पसन्द करने के लिए हमें ो छोड़ देता है। वह सबसे बड़ा जालिम है, अक्सर हमारे मुँह तक आये हुए कौर न लेता है और इच्छा स्वतन्त्र की ओट में म छूट देता है, कि हमारी मजबूरी के सके सिर्फ उसी को आनन्द मिलता है। उसे हिन्दू धर्म के अनुसार उसकी लीला है। तो माया है। हम कुछ नहीं हैं। सिर्फ वही । अगर हम हों, तो हमें सदा उसके गुणों का गान करना चाहिये और उसकी इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। आइये, उसकी वंशी की नाद पर हम नाचें, सब अच्छा ही होगा

बदला मत माँगो।

(ऋषि तिरुवल्लुवर के उपदेश)

मैंने इतना किया पर इसका बदला मुझे क्या मिला? उतावले मनुष्य! बदले के लिए इतनी जल्दी क्यों करते हो? बादलों को देखो, वे सारे संसार पर जल बरसाते फिरते हैं, किसने उनके अहसान का बदला चुका दिया? बड़े-बड़े भूमि-खंडों का सिंचन करके उनमें हरियाली उपजाने वाली नदियों के परिश्रम की कीमत कौन देता है? हम पृथ्वी की छाती पर जन्म भर लदे रहते हैं और उसे मल-मूत्र से गंदी करते रहते हैं, किसने उसका मुआवज़ा अदा किया है? वृक्षों से फल, छाया, लकड़ी पाते हैं, पर उन्हें क्या कीमत देते हैं? परोपकार स्वयं ही एक बदला है। इस समय तुम उसे व्यर्थ समझ रहे हो, पर जब तुम परोपकार करने स्वयं अनुभव करोगे, तो देखोगे कि ईश्वरीय व दान की तरह यह दिव्य गुण स्वयं ही कितना शांतिदायक है, हृदय को कितनी महानता प्रदान करता है। उपकारी जानता है मेरे कार्यों से जितना लाभ दूसरों का होता है, उससे कई गुना स्वयं मेरा होता है। ज्ञानवान् पुरुष जो कमाते हैं, वह दूसरों को बाँट देते हैं, वे सोचते हैं, कि प्रकृति जब जीवन सरीखी बहुमूल्य वस्तु मुफ्त दे रही है, तो हम अपनी फालतू चीजें दूसरों को देने में कंजूसी क्यों करें? वह बुरे दिनों में और विपत्तियों की घड़ियों में भी इस दिव्य गुण का परित्याग नहीं करता। वह जब भौतिक पदार्थ देने में असमर्थ होता है, तो अपनी सद्भावनाएं और शुभ कामनाएं ही दूसरों को देता रहता है।

बड़े खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकने के लिये छतें और छज्जे बने हुए हैं। दालान-दालान में, कोठरी-कोठरी में, भिन्न-भिन्न प्रकार से मनुष्य को सुख पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है। घर के भीतर से पानी बाहर निकालने के लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचार से घर बनाया गया है कि रहने वालों को सब ऋतु में सुख देवे। इस घर को देखकर हम कहते हैं कि इसका रचने वाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहने वालों के सुख के लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचार कर घर रचा। हमने रचने वाले को देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि, घर का रचने वाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान् पुरुष है।

अब हम अपने शरीर की ओर देखते हैं। हमारे शरीर में भोजन करने के लिये मुंह बना है। भोजन चबाने के लिये दाँत हैं, भोजन को पेट में पहुंचाने के लिये गले में नाली बनी है। उसी के साथ श्वास पवन के मार्ग के लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजन को रखने के लिये उदर में स्थान बना है। भोजन पचकर रुधिर का रूप धारण करता है, वह हृदय में जाकर इकट्ठा होता है और वहाँ से सिर से पैर तक सब नसों में पहुँच कर मनुष्य के सम्पूर्ण अङ्ग को शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजन का जो अंश शरीर के लिये आवश्यक नहीं है, उसके मल होकर बाहर जाने के लिये मार्ग बना है। दूध, पानी या अन्य रस का जो अंश शरीर को पोसने के लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलने के लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखने के लिये हमारी दो आँखें, सुनने के लिये दो कान, सूंघने को नासिका के दो रन्ध्र और, चलने-फिरने के लिये हाथ-पैर बने हैं। सन्तान की उत्पत्ति के लिये जनन इन्द्रियाँ हैं। हम पूछते हैं—क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड़ पदार्थों के संयोग से हुई है? या इसके जन्म देने और वृद्धि में, हमारे घर के रचयिता के समान, किन्तु उससे अनन्त गुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्मा का प्रभाव है?

इसी विचार में डूबते और उतराते हुए अपने मन की ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है इसकी—हमारे मन की विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति गणनाशक्ति, रचनाशक्ति, स्मृति, धी, मेधा हमको चकित करती हैं। इन शक्तियों से मनुष्य क्या-क्या ग्रन्थ लिखे हैं, कैसे-कैसे काव्य रचे क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या क्या आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं। यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने और गाने की शक्ति भी हमको आश्चर्य में डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टि में सर्वत्र दिखाई पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसका अन्त तथा आदि का पता नहीं चलता। इस रचना में एक-एक जाति के शरीरियों के अवयव ऐसे नियम से बैठाए गये हैं कि सारी सृष्टि शोभा से पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टि के आदि से सारे जगत् में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है, जो सदा से चली आई है, सर्वत्र व्याप्त और अविनाशी है।

हमारी बुद्धि विवश होकर इस बात स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचना का कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनन्त-शक्ति सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्ति को हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम कृष्ण, क्राइस्ट, जिहोवा, गाड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्रों नाम से पुकारते हैं।

प्रेम आत्मा का स्वरूप है। आनन्द उसका गुण है। यदि तुम प्रेम में विश्वास करते हो तो अपनी प्रेम-शक्ति दुनियाँ को आनंद में डुबो दोगे।

सत्य नारायण का व्रत ।

(विद्यालंकार पं० शिवनारायण शर्मा, आगरा)

"नहिं सत्यात् परोधर्मः"—सत्य से परे और धर्म नहीं है, इस श्रेष्ठ धर्म से पतित हो कर, मिथ्या के वशीभूत हो कर, केवल अर्थ और काम की सेवा करने से ही आज हम रोग, शोक, अभाव, उत्पीड़न से जर्जरीभूत, मिथ्या-अधर्म के तीव्र पेषण से संकुचित हैं। याद रखिये, हमारा यह देश धर्म-भूमि' है, यहाँ धर्म को त्याग कर कोई अधिक समय तक सुख स्वच्छन्द हो कर रह नहीं सकता। अधर्म के सामयिक प्रलोभन से मुग्ध हो कर अब कब तक जीवन मिथ्यामय-अशन्तिमय किये रहोगे? आओ, जाति, धर्म, सम्प्रदाय का विचार छोड़ कर सब 'सत्य-परायण होओ'।

आपके बालक, दास, दासी, मित्र आदि यदि आपसे झूंठी बात कहें, आपको धोखा दें, तो आपके प्राण पर कितनी चोट लगती है; उतनी ही, वैसी ही व्यथा आपकी झूंठी बातों से पाकर दूसरे लोग भी व्यथित होते होंगे—यह तो विचार देखिये। जिनके संसर्ग में आप रहते हैं, वे यदि निष्कपट व्यवहार करें, तो आप कितने सुखी होंगे; उसी प्रकार दूसरे लोग भी आपसे सरल सत्य-व्यवहार पाने की आशा करते हैं। पक्षान्तर में जगत् के सब लोग झूठ बोलें, धोखा दें, तो भी आप कभी सत्य न छोड़िये, फिर देखिये कि आपके प्राण में कैसी शान्ति विराजती है, उस शांति का कण-मात्र पाने की आशा से सारा जगत् मुग्ध नेत्रों से आपकी ओर ताकता रहेगा।

आप मनुष्य हैं, आपकी नस-नस में सत्यदर्शी ऋषियों का रक्त प्रवाहित हो रहा है, आप सत्य से ही आये हैं, अब उस विलुप्तप्राय: पुण्यमय सत्य-स्मृति को जाग्रत करके देखिये, कि आपका वाक्य सत्य, विचार सत्य, और कार्य सत्य है या नहीं। क्या आप सत्यमय होना चाहते हैं? तो उसका उपाय ध्यान देकर सुनिये :—

किसी दिन उपयुक्त समय पर यथासम्भव शुद्ध प्रशान्तचित्त हो कर किसी पवित्र निर्जन स्थान में स्थिर भाव से बैठिये "सत्यं परं धीमहि" मन-ही-मन धारणा कीजिये, कि सत्य स्वरूप परमात्मा तुम्हारे अन्तर्बाहर पूर्ण रूप से व्याप्त हो रहा है। भगवान् का जो नाम और रूप आपको प्रिय हो, वही नाम और रूप यथाशक्ति स्मरण कर भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर अधीरभाव से प्रार्थना कीजिये, कि 'आप हमें सत्यपरायण कीजिये, आप हमें सत्य परायण कीजिये। मिथ्या प्रलोभन से हमारी रक्षा कीजिये, जिससे हम भूल कर भी कभी झूठ न बोलें। आप सर्व शक्तिमान हैं, हमें शक्ति दीजिये, जिससे हम किसी अवस्था में कभी भी मिथ्या मार्ग पर न चलें।

किसी ऐसे विशेषभाव से प्रार्थना करके सत्य बोलने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो, फिर प्रतिदिन प्रात; काल उठते ही शय्या पर बैठे-बैठे कई बार "सत्यं परं धीमहि" मंत्र पाठ कीजिये, अपने-अभीष्ट देवता को स्मरण कर दिन भर के लिए प्रार्थना कीजिये, कि प्रभो! आप हमें इस भाव से चलाइये कि जिससे आज दिन-रात में एक बार भी झूठ न बोलना पड़े।

प्रतिदिन प्रातः काल यह स्मरण करने और अनावश्यक बातें त्यागने की प्राणपन से चेष्टा करो। जब किसी से बात-चीत या व्यवहार करो, तब कम से कम एक बार पूर्वोक्त सत्य मन्त्रस्मरण कर लो। इसी तरह दिन के कार्य समाप्त करके रात्रि में शय्या पर शयन करते समय एक बार स्मरण कर देखो कि दिन में कोई झूठी बात कही वा कोई मिथ्या व्यवहार तो नहीं किया है यदि न हुआ हो तो कृतज्ञतापूर्वक भगवान् को धन्यवाद देकर कहो—प्रभो! आपकी कृपा से मैं आज सत्य की रक्षा कर सका हूँ, आप मेरा भक्ति-हीन प्रणाम ग्रहण कीजिये, जिससे मैं प्रतिदिन इस भाव से आपकी कृपा का अनुभव कर सकूँ।"

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्

(श्री स्वामी रामतीर्थ का वचनामृत)

"शिवोऽहम्" तो सभी कहते हैं, क्या भेदवादी क्या अभेदवादी, क्या भक्त, क्या कर्मकाण्डी, क्या हिन्दू और क्या कोई। सब ही अपने दिल के भीतर तो अपने आपको बड़े से बड़ा मानते हैं और साबित करते हैं। वह भेदवादी भक्त जो अभी मन्दिर में देव के सामने अपने तईं 'नीच, पापी, अधम, मूर्ख' कहते-कहते थकता नहीं था, जब बाहर बाजार में निकला तो उसे कोई "अरे ओ नीच" कह कर पुकारे तो सही, फिर देखो तमाशा, कचहरियों में क्या-क्या गति होती है। अन्दर का 'शिवोऽहम्' कभी मर ही नहीं सकता। मरे क्यों कर, साँच को आँच कहाँ? पर हाँ, अपने तईं देहादि रख कर जो शिवोऽहम् का मुलम्मा ऊपर चढ़ाना है यह तो पौंड्रक की तरह झूठा विष्णु बनना है। इस प्रकार से 'वासुदेवोऽहम्' अब दुनिया अहंकार की बोली द्वारा बोल रही है। यह तो मैले ताम्र के पात्र में पायस पकाना है और जहर से मर जाना है। वेदान्त का उपदेश यह है कि क्षीर तो पिया जाय, पर मैले ताम्र पात्र में नहीं। देहाभिमान अन्दर और शिवोऽहम् का ऊपर-ऊपर से मुलम्मा तो नहीं बल्कि शिवोऽहम् अन्दर हो और अन्दर से अग्नि की तरह भड़क-भड़क कर देहाभिमान को जला दे। यह हो गया तो देहाभिमान, कृपणता, भय, शोक की ठौर कहाँ? इस भेद को (नहीं अभेद को) जिसने जाना, निधड़क हो गया, मूर्तिमान उदारता बन गया, बल, शक्ति और तेज का दरिया (नद) हो निकला। कोई भी बल कहाँ से आता है? इस उदारता से जिसमें शरीर और प्राण की बलि देने को हम तैयार हों, शिर को हथेली पर लिये चलें।

पर्वत के शिखर के शिखर से राम पुकार कर गाता है:—संसार को सत्य मान कर उसमें कूदते हो, फूस की आग में पच-पच कर मरते हो, यह उग्र तपस्या क्यों? इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होगा। देहाभिमान के कीचड़ में, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द रूप को भूल कर, फँसते हो, दलदल में धँसते हो, गल जाओगे। ब्रह्म को बिसार कर दुःखों को बुलाते हो शिर पर गोले बरसाते हो, ओ गुल (पुष्प)! जल जाओगे। सत्य को जवाब देकर मिथ्या नाम-रूप में क्यों धक्के खाते हो? जिनको श्वेत मक्खन का पेड़ा समझे हो, यह तो चूने (क़लई) के गोले हैं खाओ तो सही, फट जाँयगी अन्तड़ियाँ, झूठ बोलने वाले का बेड़ा ग़रक। मैं सच कहता हूँ, दुनियाँ की चीजें धोका है। होश में आओ, ब्रह्म ही ब्रह्म सत्य है। ज्येष्ठ आषाढ़ के दोपहर के वक्त भाड़ की तरह तपे हुए मरुस्थल में मंकि मुनि जब अति व्याकुल हो रहा था, और उसने पास के एक ग्राम में जाकर आराम करना चाहा, उस समय वशिष्ठ भगवान् के दर्शन हुए। वशिष्ठ जी कहते हैं:— बेशक इस गर्मी में हजार बार जल मर-पर वहाँ मत जा, जहाँ तन के तनूर में पड़ेगा। यहाँ पर तो शरीर ही जलता है, वहाँ अविद्या के ताप से सारे का सारा सड़ेगा।

भाई! मुरदे को उठा कर जो चिल्लाया करते हो 'राम राम सत्य है' आज पहले ही समझ जाओ, अभी समझ लो तो मरोगे ही नहीं, मरने के वक्त गीता तुम्हारे किस काम आवेगी? अपनी जिन्दगी को ही भगवन् का गीत बनादो। मरते वक्त दीपक तुम्हें क्या उजाला करेगा? हृदय में हरिज्ञान प्रदीप अभी जला दो।

कृष्ण त्वदीय पद पङ्कज पञ्जरान्ते, अद्यैव मेविशतु मानस राजहंसः। प्राण प्रयाण समये कफ़ वात पित्तैः, कण्ठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते॥

हे भगवान कृष्ण! आपके चरणकमल के पिंजड़े में मेरा मन रूपी राजहंस आज ही बैठ जावे क्योंकि प्राण त्यागते समय कफ़, वात और पित्त से कण्ठ रुक जायगा और हमें इस कारण आपका स्मरण कैसे हो सकेगा।

पतितः पशुरपि कूपे निःसतुं चरण चलनं कुरुते।
धिकृत्या चित्त भवाब्धे रिच्छामपि नोविभर्षिनिःसतुम्॥

कुए में गिरा हुआ पशु भी वहाँ से निकलने को पैरों को चलाते हैं, परन्तु हे मन, तू उस संसार से निलने की इच्छा तक नहीं करता, इसलिये तुझे धिक्कार है।

परमहंस रामकृष्णजीके उपदेश !

पानी पड़ते ही मिट्टी गल जाती है किन्तु पत्थर ज्यों का त्यों बना रहता है। दुर्बल श्रद्धा वाले मनुष्य दुःखों में घबरा जाते हैं किन्तु परमात्मा पर विश्वास करने वाला पत्थर की तरह अविचल बना रहता है।

पटरी पर चलने वाला इञ्जन, लोहे व पत्थर से भरे हुए अनेकों डिब्बों को खींचता हुआ दौड़ता रहता है। धर्म मार्ग पर चलने वाला अनेक सांसारिक मनुष्यों को अपने साथ पार करता जाता है।

बच्चे एक खम्भे को पकड़ कर उसके चारों ओर घूमते रहते हैं, किन्तु गिरते नहीं। इसी तरह ईश्वर का अवलम्ब रख कर मनुष्य सांसारिक कर्म करता हुआ भी पतित नहीं होता।

फटे पुराने जूते और कपड़े पहनने से नम्रता के विचार उत्पन्न होते हैं और कोट बूट पहनने से अभिमान पैदा होता है। चिकन का कुर्ता और पल्लेदार टोपी पहन कर गजलें गाने की सूझती है तो गेरुआ वस्त्र पहन कर वैराग्य के विचार उठते हैं। वस्त्र निर्जीव हैं फिर भी उनकी श्रेणी के अनुसार विचार उत्पन्न होते हैं। सादगी पसन्द लोगों को सादा वस्त्र पहनने चाहिये।

सूर्य का प्रकाश सब जगह एक समान पड़ता है परन्तु पानी या शीशा जैसे स्वच्छ पदार्थों पर ही, उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है,इसी प्रकार का ईश्वर प्रकाश सर्वत्र समान है, किन्तु वह दिखाई पवित्र आत्माओं में ही देता है।

कचौड़ियाँ बाहर से तो आटे की होती हैं, किन्तु भीतर मसाला भरा होता है, उनकी अच्छाई, बुराई भीतर के मसाले से देखी जाती है, इसी प्रकार सब मनुष्यों के शरीर तो प्रायः एक से ही होते हैं, परन्तु हृदयों में अन्तर होता है, इसी अन्तर के कारण भले और बुरे की पहचान की जाती है।

सच्चा प्रेम-सुख का मूल

(स्वामी विवेकनन्द जी)

सच्चे प्रेम से दुःख की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। सच्चा प्रेम करने वाले को, अथवा जिस वस्तु पर उसका प्रेम है उसको, प्रेम से दुःख होना सर्वथा असम्भव है। फिर प्रेम करने वाला और उसका प्रेम विषय हर घड़ी दुःख में डूबे हुए क्यों दिखाई देते हैं ? इसके उत्तर में हम एक उदाहरण उपस्थित करते हैं जो संसार में सब जगह पाया जाता है। एक पुरुष का एक स्त्री पर प्रेम होता है, यहाँ तक कि ध्यान में, मन में स्वप्न में उसे छोड़ कर और कुछ दीखता ही नहीं। क्या यह स्वर्गीय प्रेम है ? जरा ठहरिये और प्रेम का शास्त्रीय पृथक्करण हमें करने दीजिये, तब आपको इसका सच्चा स्वरूप मालूम होगा। उसकी इच्छा रहती है कि वह स्त्री सदैव मेरे पास ही रहे, पास ही खड़ी रहे, पास ही खावे पीवे, मतलब यह है कि उसे करीब-करीब इसका गुलाम ही बन कर रहना चाहिये। मानो स्वतन्त्र रीति से उसे और कार्य ही नहीं है। उसके मुँह से निकलने वाला प्रत्येक शब्द यह स्वीकार करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसे स्त्री को अपना गुलाम बना कर वह स्वयं भी उसका गुलाम बनता है। अब आप ही सोचिये, इन दो गुलामों में प्रेम का सच्चा स्वरूप चिरस्थायी कहाँ तक रह सकता है ? यदि वह स्त्री कहीं क्षणभर के लिये भी बाहर जाती है तो यह स्वयं अपने मनमें उलटे सीधे विचार लाकर अपने को दुखी कर लेता है। मित्रो ! सच्चे प्रेम का यह स्वरूप नहीं है।

इन्द्रिय जन्य सुख की अभिलाषा से पागल होने वाले मनुष्य की यह एक लहर मात्र है। यदि स्त्री उसके कहने के अनुसार कोई बात करने से इनकार करती है तो बस, इसका मन-मन बिगड़ते देर नहीं लगती। जिस जगह दुःख की उत्पत्ति होती हुई देखी जाती है वह सच्चा प्रेम ही नहीं है। वास्तव में वह और ही कुछ है।

कथा—

दत्तात्रेय के २४ गुरु

सिद्ध योगियों के अधिराज महर्षि दत्तात्रेय को बहुत बड़ी मात्रा में ज्ञान की आवश्यकता थी। वे मनोविज्ञान शास्त्र के धुरन्धर पण्डित थे, इसलिये जानते थे कि किसी भी ज्ञान को जान लेने मात्र से वह मन की गहरी भूमिका में उतर कर संस्कारों का रूप धारण नहीं कर सकता। एक-एक पैसे को बिकने वाली पोथियों में सत्य बोलो! धर्म का आचरण करो, लिखा होता है परन्तु इससे कौन सत्य-वादी बन गया है? किसने धर्मात्मा का पद पाया है? मन को सच्ची शिक्षा देने के लिये अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, इनमें सबसे बड़ा साधन गुरु है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। दत्तात्रय विचार करने लगे—किसे गुरु बनाना चाहिए? वे बहुत से योगी-संन्यासियों को जानते थे, अनेक विद्वानों से उनका परिचय था, सैकड़ों सिद्ध उनके मित्र थे। तीनों लोकों में एक भी तत्वदर्शी ऐसा न था, जो उन्हें जानता न हो और यदि वे उससे ज्ञान सीखने जाते, तो मना कर देने की क्षमता रखता हो। इनमें से किसके पास ज्ञान सीखने जावें, इस प्रश्न पर बहुत दिनों तक वे सोचते रहे, पर कोई ठीक निर्णय न कर सके। वे सर्वगुण-सम्पन्न गुरु से दीक्षा लेना चाहते थे, पर वैसा कहीं भी कोई उन्हें दिखाई न पड़ रहा था। मनुष्य-शरीर त्रुटियों का भण्डार है। जिसे देखिये, उसमें कुछ न कुछ त्रुटि मिल जायगी। पूर्णतः निर्दोष तो परमात्मा है। जीवित मनुष्य ऐसा नहीं देखा जाता।

दत्तात्रय जब सर्वगुण-सम्पन्न गुरु न चुन सके तो उनके हृदयाकाश में आकाश-वाणी हुई। मन में आत्मा का दिव्य सन्देश आया कि ऋषि, मूर्ख मत बनो! पूर्णतः निर्दोष और पूर्ण ज्ञानवान व्यक्ति तुम तीनों लोकों में ढूंढ़ नहीं सकते, इसलिये अपने में सच्चा शिष्यत्व पैदा करो। जिज्ञासा, श्रद्धा और विश्वास से अपने हृदय में पात्रता उत्पन्न करो, फिर तुम्हें गुरुओं का अभाव न रहेगा। दत्तात्रय के नेत्र खुल गये, उनकी सारी समस्या हल हो गई। ज्ञान-लाभ करने का जो एक मात्र रहस्य है, वह उन्हें आकाश-वाणी ने अनायास ही समझा दिया।

ऋषि का मस्तक श्रद्धा से नत हो गया। उन्होंने दूसरों के अवगुणों को देखना बन्द कर दिया और ज्ञान एवं पवित्रता की दृष्टि से ही संसार को देखने लगे। शिष्य की भावना उनके मानस-लोक में लहलहाने लगी। उन्हें गुरुओं के तलाश करने में जो कठिनाई प्रतीत हो रही थी, वह अब बिलकुल न रही। अपना मनोरथ पूरा करने के लिये—ज्ञान-लाभ की इच्छा से वे उत्तर दिशा की ओर चल दिये।

घर से निकलते ही उन्होंने देखा कि अन्तरिक्ष तक विशाल भूमण्डल फैला हुआ है। वे सोचने लगे, यह पृथ्वी माता कितनी क्षमाशील है। स्वयं पद-दलित होती हुई भी समस्त जीव-जन्तुओं को सब प्रकार की सुविधाएँ देती रहती है, ऐसी परोपकारिणी पृथ्वी मेरी गुरु है। इससे मैंने क्षमा का गुण सीखा। हे पृथ्वी! मैं तुझे नमस्कार करता हूं, तेरा शिष्य हूं।

आगे चलकर उन्होंने पर्वत देखा। वह अपने प्रदेश में अनेक प्रकार के वृक्ष, धातुएँ, रत्न, नदी-नद उत्पन्न करता था और उस समस्त उत्पादन को लोक-सेवा के लिये निःस्वार्थ भाव से दूसरों को दे देता था। ऐसे उदार, परोपकारी से उपकार का गुण सीखते हुए ऋषि ने उसे भी अपना गुरु बना लिया।

कुछ दूर और चलने पर उन्हें एक विशाल वृक्ष दिखाई पड़ा। यह वृक्ष धूप, शीत को सहन करता हुआ एकाग्र भाव से खड़ा था और अपनी छाया में असंख्य प्राणियों को आश्रय दे रहा था।

पत्थर मारने वालों को फल देना इसका स्वभाव था। ऋषि ने कहा—हे उदार वृक्ष, तू धन्य है! मैं तुझे गुरु बनाता हुआ प्रणाम करता हूँ।

वृक्ष को छोड़कर आगे चले, तो शीतल सुगन्धित वायु ने उनका ध्यान आकर्षित किया। वे सोचने लगे—यह पवन क्षण भर भी बिना विश्राम लिये प्राणियों की जीवन-यात्रा के लिये बहता रहता है। अपने पोषक द्रव्य उन्हें देता है और उनकी दुर्गन्धियों को अपने में ले लेता है। इसी के आधार पर समस्त जीव जीवित हैं, तो भी यह कितना निरभिमान और कर्तव्य-परायण है। ऋषि ने शिष्य-भाव से वायु को भी नमस्कार किया।

आकाश, जल और अग्नि की उपयोगिता पर उन्होंने ध्यान दिया, तो उनके मन में बड़ी श्रद्धा उपज़ी। यह तत्व जड़ होते हुए भी चैतन्य मनुष्य की अपेक्षा कितने तपस्वी, कर्मवीर, परोपकारी और त्यागी हैं। इनका जीवन एक मात्र उपकार के लिये ही तो लगा हुआ है। दत्तात्रय ने इन तीनों को भी गुरु बना लिया।

अब उनकी निगाह सूर्य और चन्द्रमा पर गई। यह अपने प्रकाश से विश्व की कितनी आवश्यकताएँ पूर्ण करते हैं। बेचारे स्वयं दिन-रात घूम-घूम कर दूसरों के लिये प्रकाश, गर्मी और शीतलता जैसी अमूल्य वस्तुएँ उनके स्थानों पर ही बाँटते रहते हैं। वे इस बात की भी प्रतीक्षा नहीं करते कि कोई हमारे पास हमारी सम्पदा को माँगने आवे, तब उसे दान दें। बिना माँगे ही उनका अक्षय सदावर्त सबके घर पर पहुँचता रहता है। ऋषि ने उन्हें भी अपना गुरु मान लिया।

पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, वायु, अग्नि, जल, आकाश, सूर्य और चन्द्र को गुरु बनाने के बाद वे एक स्थान पर बैठ कर सुस्ता रहे थे कि उन्होंने देखा, सामने एक पेड़ की डाल पर एक चिड़िया अपने बच्चों की मृत्यु से दुखी होकर प्राण त्याग रही है। जब वह मर गई, तो उसके पति ने भी प्राण त्य[ाग] दिये। ऋषि ने सोचा कि सांसारिक पदार्थों [व] धन-सन्तान पर अत्यधिक मोह करने का परिण[ाम] मृत्यु जैसी वेदना का सहन करना है। उन्हें ल[गा] कि मृत पक्षी मुझे उपदेश कर रहे हैं कि "संसार के प्रति अपना कर्तव्य पालन कर[ना] चाहिए, पर उससे झूठा ममत्व बाँध लेने पर ब[ड़ी] दुर्गति होती है।" ऋषि ने उस होला नाम[क] पक्षी की शिक्षा स्वीकार की और उस मृतक [को] गुरु बना लिया। पक्षी की दीक्षा पर वे मनन क[र] रहे थे कि पास के बिल में एक अजगर सर्प बै[ठा] हुआ दिखाई दिया। वह भारी शरीर के कार[ण] अधिक दौड़-धूप करने में असमर्थ था, इसलि[ए] उसे अक्सर भूखा रहना पड़ता था। जो कुछ थो[ड़ा] बहुत मिल जाता, उसी से सन्तोष कर लेता। अजगर की ओर ध्यान से देखा तो दत्तात्रय [के] मन में ऐसे विचार उठे—मानो यह मेरी ओ[र] मुंह करके कह रहा है कि परिस्थितियों के कार[ण] जब हम असमर्थ हों, तो थोड़े में ही सन्तो[ष] करलें और न मिलने वाली वस्तु के लिये दुःख [न] करें। दत्तात्रय ने उसे भी गुरु-भाव से अभि[]वादन किया। —अपूर्ण।

ईश्वर और उनके नियम भिन्न नहीं है। क[र्म] किसी को छोड़ता नहीं, न ईश्वर किसी को छोड़[ता] है। दोनों एक वस्तु हैं। एक विचार हमें कठो[र] बनाता है, दूसरा नम्र। संसार में कोई न को[ई] अपूर्व चेतनमय शक्ति काम कर रही है। उसे आ[प] चाहे जिस नाम से पुकारें, लेकिन वह प्रत्येक का[म] में हस्तक्षेप तो किया ही करती है। हमारा प्रत्येक विचार कर्म है। कर्म का फल होता है। फल ईश्वरीय नियम के आधीन है। यानी हमारे प्रत्येक काम में ईश्वरीय सत्ता नियम हस्तक्षेप किया ही करता है। फिर भले हम इसको जानते हों या अनजान हों। स्वीकार करें या अस्वीकार।

कथा—

संतोषी सदा सुखी

(श्री० प्रेम नारायण शर्मा गिरदावर कानून गो, अम्बाह)

एक राजा को इस बात से बड़ा दुःख था कि उसके अपार सम्पत्ति और पुत्रादि होते हुए उसको सुख नहीं मिलता था। अतएव उसने अपने प्रधान मंत्री से पूछा कि क्या अपने राज्य में कोई ऐसा भी मनुष्य है जो सुखी हो ? अगर हो तो उसे दरबार में उपस्थिति किया जाय।

मन्त्री जी यह आज्ञा पाकर सुखी मनुष्य ढूढने को निकले। एक स्थान पर देखते हैं, कि एक मनुष्य हाथी पर सवार है, अच्छे २ वस्त्राभूषण पहिने हुए हैं, उसके चारों तरफ बाजे बजते जा रहे हैं और अनेकों पुरुष उसके साथ हाथी घोड़ों पर सवार आनन्द से जा रहे हैं, प्रधान जी यह सब देख कर बड़े प्रसन्न हुए और सोचा कि यह मनुष्य सुखी मालूम होता है इसको कल महाराज के पास ले चलेंगे। ऐसा विचार कर पीछे हो लिये और उसके घर पहुंचे जहाँ पर अनेकों दीप प्रकाश कर रहे थे, स्त्रियां मङ्गल गीत गा रहीं थीं, रात को वहीं ठहरे। सुबह क्या देखते हैं, कि जो मनुष्य एक हाथी पर सवार बड़ा प्रसन्न चित्त बैठा था, आज बहुत उदास है और अपने पास बैठे हुए मनुष्यों से कह रहा है कि इस विवाह में मैं बहुत ऋणी हो गया। अब कैसा होगा। प्रधान जी यह देख कर वहाँ से चल दिये।

एक स्थान पर क्या देखते हैं, कि एक बड़े हृष्ट-पुष्ट महात्मा जटा रखाए बैठे हुए माला जप रहे हैं, प्रधान जी ने इनको देख कर सोचा कि यह सुखी मालूम होते हैं, इनको महाराज के पास ले चलेंगे, वहाँ खड़े विचार करने लगे। इतने में दो साधू आए जो महात्माजी के चेले प्रतीत होते थे। दोनों आकर महात्माजी के पास लड़ने लगे कि महाराज इसने आपकी बिना आज्ञा बाजार में मिठाई खाई, दूसरा कहने लगा महाराज यह आटा कम लाया, और पैसे बचा लिये, महात्मा जी यह बातें सुन के बड़े दुखित हुए। प्रधान जी वहाँ से भी चल दिये।

एक स्थान पर क्या देखते हैं कि एक बहुत छोटा सा घर है और घर के सामने एक सुन्दर गाय बँधी हुई घास खा रही है। प्रधान जी उस गाय को देख रहे थे कि इतने में एक मनुष्य सिर पर घास का गट्ठा रखे दो बैलों को लिए हुए आया, उसने घास का गट्ठा घर के भीतर रखा, बैलों को बाँधा और इनके पास आकर हाथ जोड़ कर बोला, महाराज आप कौन हैं ! कहाँ से पधारे हैं ? और क्या आज्ञा है ? प्रधान जी बोले हम परदेशी हैं और आज यहां ठहरना चाहते हैं, उस मनुष्य ने कहा अहो भाग्य, ! आप ठहरिये और कह कर भीतर गया और एक छोटी सी खाट और बोरी लाकर बिछादी। प्रधानजी बैठ गए।

प्रधान जी—तुम्हारा नाम क्या है और तुम्हारा जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है ?

किसान—महाराज, मेरा नाम संतोषी है, यह मेरा छोटा सा घर है, मेरी स्त्री है और एक पुत्र है, १२ बीघा खेती है। यह एक गाय है, यही मेरी गृहस्थी है। इसी से भगवान् जीविका चलाते हैं, दोनों समय आनन्द से भोजन करते हैं, समय पर जिमींदार का पोता दे देते हैं। महाराज हमारे पास द्रव्य तो है नहीं, परन्तु हम को किसी का कुछ देना भी नहीं है, और न हमें कुछ चाहिए भी, जो कुछ भगवान ने दिया है, हमारे लिये सब कुछ है।

प्रधानजी रात को वहाँ ठहरे प्रातःकाल उस मनुष्य को लेकर दरबार में उपस्थित हुए।

महाराज—क्या सुखी मनुष्य मिला ?

प्रधान जी—हाँ महाराज उपस्थित है। महाराज एक किसान को देख कर बोले क्या यह सुखी है ? प्रधान जी ने उत्तर दिया हाँ महाराज ! इसी से पूंछिये, यह स्वयं सब बता देगा।

महाराज से सतोषी ने वही अपना हाल जो उसने प्रधानजी से कहा था, कह दिया। प्रधान मंत्री ने भी अपनी खोज का सारा हाल कहा। महाराज उनकी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कहा वास्तव में संतोषी ही सदा सुखी है।

सूर्य की जीवनदात्री शक्ति।

प्राणियों को जीवन और आरोग्य प्रदान करके उनके रोग और अंधकार को दूर करने की जितनी शक्ति सूर्य में है, उतनी संसार भर के समस्त आरोग्य-प्रद पदार्थों को मिला देने से भी नहीं हो सकती। भारतीय तत्वदर्शी इस रहस्य को अतीतकाल से जानते हैं, अतएव उन्होंने सूर्य को भगवान माना है और अपने दैनिक कार्यों एवं धार्मिक विधान में सूर्य के सम्मुख रहने, उससे शक्ति प्राप्त करने की उत्तम व्यवस्था की है।

वैज्ञानिक खोजो ने सूर्य की अद्भुत शक्ति को एक स्वर से स्वीकार किया है। सर्व प्रथम विज्ञान-वेत्ता नौर्मन डेवी ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपने महत्वपूर्ण अनुसंधानों के पश्चात् यह घोषित किया था, कि "सूर्य से बढ़ कर रोगों को दूर करने वाला और कोई चिकित्सक नहीं है। सूर्य रश्मियों की समता संसार की कोई औषधि नहीं कर सकती, करोड़ों बीमारियों को बहुत ही शीघ्र दूर कर देना सूर्य शक्ति के अन्तर्गत ही हो सकता है।"

एक दूसरे आधुनिक अन्वेषक ने निर्विवाद-रूप से इस बात को मान लिया है, कि रोग कीटों को नष्ट करने की सूर्य किरणों में प्रचंड शक्ति है। कृमिनाशक, जर्मीसाइड (Germicide) या फनायल आदि किसी वस्तु में वैसा गुण नहीं है।

सर आलिवर लाज इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, कि लोग स्वास्थ्य की उन्नति के लिए अनेक भोज्य पदार्थों, औषधियों और विशिष्ट क्रिया की खोज तो करते हैं, किन्तु सूर्य की किरणें जो आरोग्यता की अद्वितीय शक्ति रखती हैं और मुफ्त मिलती हैं, उन्हें न जाने क्यों नहीं अपनाते?

इङ्गलेंड के मेडीकल सुपरिन्टेन्डेन्ट सर हेनरी गौवेन अपना अनुभव बताते हुए कहते हैं, कि जिन लोगों को सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता या कम मिलता है, अधिकांश वे ही लोग पागल, दुष्टकर्मा, अपाहिज, अशक्त और बीमार रहते हैं। मृत्यु रजिस्टरों की रिपोर्ट इस बात की साक्षी है, कि जिस ऋतु में कुहरा अधिक रहता है और सूर्य की किरणें पृथ्वी पर कम आती हैं, उन दिनों में मृत्यु संख्या अधिक बढ़ जाती है। सबसे अधिक अँधेरा सूर्योदय से कुछ घड़ी पहले रहता है, इसलिए उसी समय बहुत बड़ी संख्या में रोगियों का महा प्रयाण होता है।

टाइम्स के सन् १९२३ के १८ अप्रेल के अङ्क में उसका मैडीकल रिपोर्टर लिखता है, कि इस वर्ष इङ्गलेंड और वेल्स में मृत्यु संख्या का अनुपात १.२१ रहा। इतनी कम मृत्युऐं आज तक कभी इस देश में नहीं हुई थीं। कारण यह है कि इस साल सूर्य का प्रकाश हमारे देश को प्रचुर परिमाण में प्राप्त हुआ, जो कि निश्चित रूप से रोगों को दूर करने वाला और जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला है।

तपेदिक की बीमारी-क्षयी के सम्बन्ध में हैलिंग द्वीप के सैंडी वाइंट स्थान में बहुत अन्वेषण हुआ है और वहाँ बड़े-बड़े शरीर शास्त्रियों ने इस सम्बन्ध में गहरी खोजें की हैं, इस सब का विस्तृत विवरण श्री० सी० ई० लोरेन्स ने एक पुस्तक में प्रकाशित किया है, वे कहते हैं कि—'यह प्रभाव प्रत्यक्ष देख लिया गया है, कि सूर्य की किरणों के प्रयोग से बीमारों के फेफड़े की सूजन कम हो जाती है और भीतर ही भीतर घाव भरने लगते हैं। यह भी स्पष्ट है, कि क्षय के कीटाणु धूप लेने के बाद बहुत घट जाते हैं। इसी प्रकार जो अनेकानेक परिवर्तन होते हैं, उनका कारण अल्ट्रा वायलेट (Ultra Violet) किरणें ही नहीं, वरन् धूप के अन्य तत्व भी हैं, जिनका अनुसंधान अभी किया ही जा रहा है।

डाक्टर मेवरिन ने इस बात को प्रमाणित किया है, कि बच्चों की हड्डियां टेढ़ी हो जाने का रोग (Ricket) सूर्य का प्रकाश पर्याप्त न मिलने के कारण होता है और जब इन रोगी बच्चों को धूप की समुचित व्यवस्था करदी जाती है, तो वह बीमारी अच्छी हो जाती है।

वेद कहता है, कि सूर्य संसार की आत्मा हैं। भौतिक विज्ञान इस सूत्र के एक-एक पद पर महा-भाष्य रच रहा है। विश्व के समस्त तत्वज्ञ एक स्वर

सतयुग आगया

(महात्मा सच्चे बाबाजी, धौलपुर)

कलियुग समाप्ति और सतयुग के आरंभ के संबन्ध में स्थूल दृष्टि से देखने पर काम न चलेगा वरन् इस सम्बन्ध में सूक्ष्म तत्वों पर दृष्टिपात करना पड़ेगा। इसके लिये इस चतुर्युगी पर विचार करना पर्याप्त न होगा, बल्कि और भी पीछे का हिसाब देखना होगा। इस समय श्रीश्वेतवाराहकल्प चल रहा है, इसमें ६ मन्वन्तर और २८ चतुर्भुजी बीत चुकीं। ७२ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है, इस प्रकार ६ मन्वन्तरों में ४३२ चतुर्युगी और इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में २८ चतुर्युगी, इस प्रकार वर्तमान कल्प में ४६० चतुर्युगी व्यतीत हो चुकीं।

जिस प्रकार ऋतुओं के परिवर्तन तथा प्रातः मध्याह्न, सन्ध्या और रात्रि आदि के समय पृथ्वी का निकटवर्ती वातावरण बदलता रहता है उसी प्रकार सूर्यमण्डल में ईश्वरेच्छा से युगों का वातावरण परिवर्तित होता रहता है। अदृश्य लोकों में सत, रज, तम में से जिनकी न्यूनाधिकता होती रहती है उसी के अनुसार युगों का आविर्भाव होता है। यद्यपि युगों की अवधि निर्धारित है तो भी प्रकृति जड़ होने के कारण वह चैतन्य सत्ता द्वारा शासित है। अतएव जब कोई दिव्य चेतना में जागृत आत्माएँ उसमें परिवर्तन करना चाहती हैं तो कर लेती हैं। बीच-बीच में यह समय घट बढ़ जाता है पर कल्प का पूरा हिसाब अन्ततः ठीक ही बैठता है। सत् के कारण १७ लाख २८ हजार वर्ष सतयुग, सत् रज के कारण १२ लाख ६६ हजार वर्ष त्रेता, रज तम के कारण ८ लाख ६४ हजार वर्ष द्वापर एवं तम के कारण ४ लाख ३२ हजार वर्ष कलियुग होता है। कई बार उच्च योग्यताओं में जागृत आत्माएँ जब अवतीर्ण होती हैं तो युग धर्म को हटा कर अपनी इच्छानुसार नवीन वातावरण भी बना डालती हैं। स्वायम्भूमन्वन्तर के त्रेता युग में राम ने अवतार लेकर उस समय सतयुग की ही सृष्टि करदी थी। द्वापर का कृष्णावतार बीच में ही सतयुग को बहुत दिनों तक प्रकट करने में समर्थ हुआ है।

इसी प्रकार कुछ तम प्रधान, आत्माएँ भी समय पर अवतीर्ण हुई हैं। रावण, कुम्भकरण, मेघनाद सरीखी तामसी चेतनाओं ने त्रेता में कलियुग उपस्थित कर दिया। कई बार तो वृत्तासुर, त्रिपुर आदि तामसी आत्माएँ लगातार कई चौकड़ी तक तम का वातावरण बनाये रही हैं और अविचल रूप से कलिकाल छाया रहा है।

उच्च कोटि की, ईश्वरीय सत्ता में जागृत आत्माएँ अपने निजी अनुभव से बताती हैं कि इन ४६० चतुर्युगियों ६८ करोड़ वर्ष तम में व्यतीत हो चुके हैं जब कि एक कल्प में ४२ करोड़ वर्ष ही तम रहना चाहिये अभी लगभग आधा कल्प व्यतीत होता है, पर पूरे कल्प में रहने वाले तम की अपेक्षा भी कुछ काल अधिक व्यतीत हो गया। अब और अधिक समय तम में व्यतीत होना किसी प्रकार वाँछनीय नहीं है। योग दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि अदृश्य जगत् में दिव्य आत्माएँ इस बात के लिये प्रबल प्रयत्न कर रही हैं कि अब तम को अधिक स्थान न मिलना चाहिये। तदनुसार युगान्तर आरम्भ हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों से तम की समाप्ति और सत् का आगमन आरम्भ हो गया है और यह कार्य बहुत जल्द पूरा होने वाला है। अब वह युग दूर नहीं है जिसमें सत् का साम्राज्य होगा। वह सतयुग आरम्भ हो गया है, उसका पूरा-पूरा अधिकार होने में कुछ समय भले ही लगे, पर अब सतयुग में का आगमन निश्चित है।

से घोषित करते हैं, सूर्य से बढ़ कर कोई डाक्टर नहीं। किन्तु हाय, अज्ञानी मनुष्य अब भी सभ्यता के नाम पर धूप का सेवन करना नहीं चाहते और खोये हुए स्वास्थ्य को सुधारने के लिए सद्वैद्य सूर्य से बच कर इधर-उधर टक्करें खाते फिरते हैं। प्रभु, इस अज्ञान को शीघ्र दूर करें।

मन चंगा तो कठौती में गंगा

शरीर का सदोष या निर्दोष होना, स्वस्थ या रोगी होना मन के ऊपर निर्भर है, क्योंकि वस्तुतः शरीर पर मन का ही शासन है। जिस प्रकार शासक को पराजित किये बिना कोई शत्रु राज्य पर अधिकार नहीं कर सकता। उसी प्रकार मन के परास्त हुए बिना दुःख शोकों का आगमन शरीर में नहीं हो सकता। इस सुदृढ़ दुर्ग की सब दीवारें अभेद्य हैं, आवागमन का केवल वही एक द्वार है, जिस का प्रहरी मन है। मन जब तक अपना दरवाजा न खोल दे कहीं से कोई वस्तु इस शरीर में आ जा नहीं सकती।

यह समझना भ्रम है कि शरीर पर मन का कोई विशेष असर नहीं होता। हम रोज देखते हैं, कि मनोभावों की प्रतिक्रिया तत्क्षण शरीर के ऊपर होती है। एक समाचार को सुन कर दिल धड़कने लगता है, तो दूसरे को सुन कर उसकी गति मन्द पड़ जाती है। प्रेम और आशा की भावनाओं से चहरा दमकने लगता है, भय से रक्त का अवरोध होता है, घृणा से सिर चकरा जाता है, क्रोध से रक्त सूखता है, लोभ से मन्दाग्नि पैदा होती है और कामुकता से विकारों से क्षयी तक उत्पन्न हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध सूत्र मन ही है और मन की स्वस्थता अस्वस्थता से शारीरिक प्रत्यक्ष परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

कहा जाता है कि आहार के अनुसार शरीर बनता है। हमारा मन है, कि मन के अनुसार शरीर बनता है। अमुक वस्तु बहु मूल्य हैं, अमुक श्रेणी के विटामिनों से युक्त है, इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि यह पदार्थ शरीर को लाभ ही पहुँचावेगा। कई मनुष्यों को दूध से घृणा हो जाती है, यदि वे एक बूँद भी दूध पीलें तो उलटी हुए बिना न रहेगी। डाक्टरी मतानुसार अण्डा एक पौष्टिक भोजन है, किन्तु एक धार्मिक मनोवृत्ति के हिन्दू को अण्डा खिला दिया जाय तो वह बीमार हुए बिना न रहेगा। मछली का तेल किन्हीं के लिए टानिक हो सकता है, परन्तु कोई ऐसे भी होते हैं, जिन्हें उसकी गंध मात्र से उलटी करा देने के लिए काफी है। इसका तात्पर्य यह है कि भोजन के गुण, खाने वाले के मनोभावों के सदृश होते हैं। क्रोध और शोक के साथ किया हुआ बहु मूल्य भोजन विषैले पदार्थ की तुलना करेगा, किन्तु हँसी खुशी के साथ खाई हुए कोदों की रोटी अंगूरों के रस जैसी बलदायक होगी।

जो लोग स्वस्थ और निरोग रहना चाहते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि इसका मूल केन्द्र मन है। कहा है कि – मन चंगा तो कठौता में गङ्गा। मन के पवित्र और प्रसन्न होने पर कठौती जैसे क्षुद्र साधन के अन्तर्गत गङ्गा जैसे दुर्लभ तत्व भरे जा सकते हैं, यह कोई कल्पना नहीं, वरन् अक्षरशः सत्य है। अपनी स्थिति के अनुसार जो कुछ भोजन तुम प्राप्त कर सकते हो उसे पवित्रता और प्रसन्नता के साथ खाओ। एक एक ग्रास के चर्वण के साथ अमृत्व की भावना करते जाओ। थाली पर हाथ डालते और छोड़ते समय परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे प्रभु यह अन्न हमारे लिए कल्याण कारी हो हमें अमृतत्व प्रदान करे। निश्चय ही वह अन्न हमारे लिए उत्तम पौष्टिक पदार्थों के समान् बल वर्द्धक सिद्ध होगा।

अपने दैनिक जीवन में मन को ऐसी स्थिति में रखिए कि वह प्रसन्न रहे और निराशा एवं क्षोभ के अन्ध कूप में न गिरने पावे। अपने कार्यों को निर्दोष एवं पवित्र रखिए, जिससे आन्तरिक शान्ति नष्ट न होने पावे। निर्भय और निर्द्वन्द रहिए ताकि रोग शोक आपको देखते ही उल्टे पाँवों लौट जावें कहते हैं कि भूत वहाँ जाते हैं जहाँ उन्हें बुलाया जाता है। इसी प्रकार रोग वहाँ जाते हैं, जहाँ उनका आदर होता है जो रोग की आव भगत नहीं करता यहाँ तक कि उनके आने का विचार

...हुत गई थोड़ी रही ?

(ले०- मङ्गलचंद भण्डारी 'मङ्गल' अजमेर)

राजा जहाँ बुद्धिमान था, वहाँ वह विचारवान और न्यायवान भी था ! प्रजा को अपने प्राणों से अधिक प्यार करता था ! उसे अपनी प्रजा के सुख दुःख का बड़ा ध्यान रहता था ! अतः यदा कदा रात को भी भेष बदल प्रजा की दशा जानने निकल जाता था !

एक दिन कोतवाल को साथ लेकर वह सारे शहर का चक्कर लगा रहा था, कि रास्ते में राजाने एक मकान में रोशनी जगमगाती हुई देखी ! राजा ने सोचा दो बजने आये हैं और अभी तक इसमें से इतनी तेज रोशनी कैसे आ रही है। उसे सन्देह हुआ वह मकान के पास जा आहट लेने लगा। राजा ने एक छेद में से झाँका तो दिखाई दिया कि एक सुन्दर लड़की कह रहीहै-नींद नहीं लेनी हूँ, सब कुछ मैं करती हूं। इतने पर भी मेरी माँ मुझे डाँटती , और सारी कमाई भी अपने पास रखती है। इस लिये मैं तो कल ही माँको जहर दे मार डालूंगी।" इतना कह कर वह लड़की बैठ गई।

राजा को अधिक जानकारी प्राप्त करने का कौतूहल बढ़ा, वह छेद में आँखें लगा कर दीवार के सहारे अधिक सावधानी से खड़ा हो गया। उसने देखा कि एक साधु वेश धारी युवक वहाँ उपस्थित है और कह रहा है कि-भाई ! मैं भी तुम्हारी ही तरह फँसा हूं। गुरू जी रात दिन चैन नहीं लेने देते। यहाँ तक आने का अवकाश बड़ी मुश्किल से कभी २ निकाल पाता हूं। कल रात को मैं भी उनका गला घोट दूंगा जिससे मार्ग की सारी बाधा उठ जाय।' इसी प्रकार एक तीसरे उपस्थित सज्जन जो देखने में कोई सेठ प्रतीत होते थे कह रहे थे कि-मेरा लड़का जवान हो चला है। और मेरे मार्ग में रोड़ा अटकाता है, अब उसे जल्लादों को सुपुर्द कर दूंगा, ताकि मेरी राह साफ हो जावे।

तीनों के कथन जब राजा सुन चुका तो उसे बड़ा दुःख हुआ और अपने साथी कोतवाल से पूछने लगा कि-प्रियवर ! कोई ऐसा उपाय बताओ जिस से कल तीन व्यक्तियों की हत्या होने से रुक जावे और भविष्य में इनका जीवन सुधर जावे। कोतवाल ने बताया कि-श्रीमन, यह लोग अपनी मृत्यु को भूल गये हैं और समझते हैं कि शायद हम सदैव ही जीवित रहेंगे, इसी लिए यह ऐसे कुकर्म करने पर उतारू हैं। इसमें यह सेठ जी तो अपनी पुत्र बधू तक पर पाप दृष्टि रखते हैं, पुत्र के समझाने पर अपना आचरण सुधार कर परलोक साधना में प्रवृत होना तो दूर रहा, वरन् अपने इन्द्रिय स्वार्थ पर आत्मज-पुत्र तक का बलिदान करने को तैयार हो गये। इन लोगों को शरीर की नश्वरता का बोध हुए बिना सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती।

दूसरे दिन राजा ने एकान्त कमरे में साधु-सेठ और वेश्या को बुलाया। राज्य कार्य तो प्रधान मन्त्री को सौंप दिया और स्वयं उन तीनों के साथ एकान्त दरबार में जा बैठे। राजा ने वेश्या को आज्ञा की कि गाना गाओ, वेश्या ने गाना गाया- पर राजा को वह पसन्द न आया। दूसरा गाना गाने की आज्ञा हुई वह भी पसंद न आया। शाम

...क मन में नहीं उठने देता, उसके घर तिरस्कृत ...तिथि की तरह वे पुनः वहाँ जाने की इच्छा नहीं ...रते। दुर्गुणों और कुविचारों के लिये अपने मन ...कपाट मत खोलिए, क्योंकि रोग और शोक इन्हीं ...नाम है। आप चाहे कुछ कहते रहें पर हमें ...ढ़ता पूर्वक यही घोषणा करने दीजिये कि सुवि-...र ही स्वास्थ्य है, प्रसन्नता ही शक्ति है। यदि कोई ...स्थ रहना चाहता है तो मन को पवित्र और ...न्न रखे, क्योंकि मन चंगा तो कठौती में गङ्गा ...का सिद्धान्त बिलकुल सत्य है।

तक इसी प्रकार गाने होते रहे पर राजा को एक भी पसन्द न आया। सब लोग भूखे प्यासे बैठे हुए थे, वेश्या भी थक गई थी, उसने कहा-महाराज! मुझे जितने गाने याद थे वह सब समाप्त हो गये अब बस, एक ही गाना शेष रह गया है। आज्ञा हो तो उसे भी सुनादूं। राजा ने कहा-सुनाओ। वेश्या ने एक बड़ा मर्म स्पर्शी गाना गाया—"बहुत गई, थोड़ी रही, यह भी बीती जाय।" यह गान इतने वेदना भरे स्वर में गाया गया था कि राजा के मुँह से वाह वाह निकलने लगी। साधु और सेठ के पत्थर हृदयों पर तो अद्भुत असर पड़ा वे पानी की तरह पिघल पड़े और फूट फूट कर रोने लगे। स्वयं वेश्या की आँखों से पश्चात्ताप की अविरल धार बह रही थी।

राजा ने गद् गद् स्वर से कहा-अज्ञानी मित्रो! मैं तुम्हारी आन्तरिक दशा जान चुका हूं। रोने से कुछ न होगा। इस पद के महत्व पर ध्यान दो-तुम्हारी आयु बहुत बीत गई है, और थोड़ी सी शेष रह गई है इसके बीतने में भी अब देर नहीं है। यह मनुष्य शरीर बार बार नहीं मिलता। तुच्छ इन्द्रिय लिप्सा को छोड़ो और धर्म का पालन करो, जिससे तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल हो। उन तीनों ही व्यक्तियों ने अपने जीवन की क्षण भंगुरता का अनुभव किया और भविष्य में सदाचार पूर्ण जीवन विताने की प्रतिज्ञा करली।

तीनों जब राज दरबार से विदा हुए तो उन का जीवन दूसरे ही प्रवाह में वह रहा था। उनका अन्तरात्मा इसी पद को गाता जाता था—'बहुत गई थोड़ी रही, यह भी बीती जाय।"

केवल गीता का पाठ मात्र करने के बजाय तुम व्यायाम करते रहो, तो स्वर्ग के निकट पहुँच सकते हो।

× × × ×

भलमनसाहत व्यवहार

जब पोप धर्म गुरूके पद पर चौदहवां क्लेमेण्ट आसीन हुआ तो आगन्तुकों ने उसे प्रणाम किया। इसके उत्तरमें पोपने भी उन्हें प्रणाम किया। चर्चके पधान कार्य-कर्ता ने उनके निकट आकर कहा-जनता के अभिवादन का धर्म गुरु को वैसा ही उत्तर नहीं देना चाहिये। पोप ने कहा—'लेकिन मुझे धर्म गुरु के आसन पर बैठे हुए इतना समय नहीं हुआ है कि अपने भलमनसाहत के व्यवहार को भी भूल जाऊँ।'

एक बार सेन्ट हेलेना में नेपोलियन दरबारियों सहित कहीं जा रहा था, सामने से एक मजूर सिर पर भारी बोझा लादे हुए जा रहा था। दरबारी तो अपने पद के रौब से रास्ते में से हटना नहीं चाहते थे। इस पर नेपोलियन ने कहा-'बोझ का सम्मान कीजिये। रास्ते में से एक तरफ हट जाइए।' वास्तव में भलमनसाहत का व्यवहार मनुष्य का एक बड़ा उत्तम गुण है। प्रसन्न चित्त और उदार व्यवहार वाला मनुष्य संसार में जहाँ कहीं भी रहेगा वहीं उसे आदर मिलेगा।

चार्ल्स डिकिन्स शीत काल में फुरसत के वक्त जिन लोगों के यहाँ जा पहुंचा था, वे उसे गरम अँगीठी की तरह घेर कर बैठ जाते थे। महा कवि गेटे जिस होटल में जाता वहाँ के सब लोग भोजन छोड़ कर उसके निकट खिसक आते। मिरावो बड़ा ही कुरूप और भद्दी शकल का आदमी था, परन्तु उसके स्वभाव में इतनी भलमनसाहत थी कि सैकड़ों स्वरूप वालों की अपेक्षा उसकी प्रतिष्ठा कहीं अधिक थी। भले मनुष्यों के लिये सब जगह स्थान है। सूर्य के प्रकाश की तरह हर मनुष्य उन का स्वागत करता है। विनम्र व्यक्ति के लिए क्रोधी और कडुए स्वभाव के मनुष्य भी नरम हो जाता है शहद के पुते हुए मनुष्य को मधु मक्खियाँ नहीं काटतीं।

आत्म-विश्वास।

बोवी का यह कथन बिलकुल सत्य है कि "जिन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं, वे चाहे कितने ही बलवान् क्यों न हों, यथार्थ में सबसे निर्बल हैं।" हमें उसी आदमी पर विश्वास करना चाहिए, जो अपने ऊपर विश्वास करता है। जो खुद अपनी योग्यता पर भरोसा नहीं करता, दूसरा कोई उस पर कैसे यकीन कर सकता है?

जब शत्रुओं ने कालोना के स्टीफेन को कैद कर लिया तो उससे कहा—"बताओ, अब तुम्हारा किला कहाँ है?" उसने हृदय पर हाथ रखते हुए उत्तर दिया—"यहाँ।" एक बार एक नाव में सीजर कहीं जा रहा था, रास्ते में तूफान आया और नाव डगमगाने लगी। यह देख कर मल्लाह घबराने लगे। तब सीजर ने कहा था—"घबराओ मत, तुम्हारी नाव में सीजर और उसका भाग्य भी है।" ऐसे ही साहसी वीरों के दुनियां चरण चूमती है, जो संपत्ति और विपत्ति सब दशा में अपने ऊपर विश्वास रखते हैं।

कई मनुष्य नम्रता या विनय के नाम पर अपना आत्म-सम्मान खो देते हैं। विनय का अर्थ यदि अपनी योग्यता प्रकट करने में असमर्थ होना होता हो और नम्रता का अर्थ किसी के सामने नाक रगड़ना हो, तो यह दोनों ही दुर्गुण कहलावेंगे। स्वाभिमानी ही नम्रता का ठीक पालन कर सकते हैं। झूठी खुशामद करने वाले बुजदिलों को भला कौन विनयी कहेगा? दुनियाँ के पास इतनी फुरसत नहीं है, कि वह हर आदमी की विद्वत्ता या योग्यता की जाँच करे। मनुष्य का चुनाव उसके मुँह से बतलाई हुई योग्यता से ही किया जाता है। जो अपने सद्गुणों पर विश्वास करता है और साहसपूर्वक प्रकट करता है, उसी को उपयुक्त स्थान मिलता है। कहते हैं कि सोते हुए शेर से भोंकने वाला कुत्ता अधिक अच्छा है।

सेचलिग कहता है—'जो मनुष्य जानता है कि मैं क्या हूँ, वह यह भी जान लेगा कि मुझे क्या होना चाहिए।' माइकेल रेनाल्डस ने कहा है, आत्म-विश्वास, आचरण का एक मूल्यवान् तत्व है। एक विद्वान् का कथन है, जो आत्मा का निरादर करता है, परमात्मा उसका निरादर करता है।

खोज में।

(श्री आनन्दकुमार चतुर्वेदी 'कुमार' छिबरामऊ)

पथिक! तुम्हें क्या हो गया है? देखो पश्चिम दिशा से काले मेघों के झुंड चले आ रहे हैं, छोटी-छोटी बूंदें भी पड़ रही हैं. चिड़िया बनों को छोड़ कर अपने घोंसलों में आ रही हैं, छोटे-छोटे बच्चे अपने झूलों को उतार कर अपने घर की ओर भाग रहे हैं और तुम प्रस्थान कर रहे हो! × × ×

बूंदें जोरों से पड़ने लगी हैं, चारों ओर रिम-झिम--रिमझिम का शब्द सुनाई देता है, वृक्षों का हिलना भी बन्द हो गया है। प्रकृति में आज एक अनौखी छटा छाई हुई है। पपीहा की पी-पी और कोयल की कूक किसके मन को आज नहीं लुभा रही है। पथिक चलो थोड़ा विश्राम कर लो। × ×

बालाओं ने अपना गान प्रारम्भ कर दिया है, वीणा की ध्वनि से घर गूंज उठा है, घुंघरुओं का स्वर बूंदों के स्वर से मिल कर एक अनोखी लहर का संचार कर रहा है। पथिक! क्या यह तुम्हारे हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती। आओ, इस समय कहाँ जाओगे। × × ×

आह! तुम हँस रहे हो, तुम किस ओर अपनी दृष्टि लगाये हो, तुम्हारी इस मुसकान में क्या रहस्य छिपा है, क्या यहाँ तुम्हें शान्ति न मिलेगी? तुम मौन क्यों हो? × × × ×

पथिक जाओ, मगर यह न भूलना कि तुम्हारा मार्ग अत्यंत संकीर्ण है, वह सरिता पानी के कारण वेग से बह रही है, मार्ग में अनेक सुवासित पुष्प तथा कंटक मिलेंगे, सावधान रहना, क्या ही अच्छा होता, कि तुम कुछ देर विश्राम करते, परन्तु नहीं, तुम तो किसी और ही की खोज में हो। × ×

हिमालय के महापुरुष

हिमालय प्रदेश सच्चे योगी महात्माओं का चिरकाल से खास केन्द्र है। इस पुण्य प्रान्त में जैसे महान् योगी हो चुके हैं वैसे अन्य प्रान्तों में बहुत ही कम हुए हैं। अब भी वहाँ बड़े-बड़े महात्माओं के वर्तमान होने की बात सुनी जाती है। सुना जाता है कि तिब्बत का ज्ञानगंज योगाश्रम योगियों का एक महान् शिक्षालय है, जिसमें सैकड़ों महान् योगी अब भी वर्तमान हैं। हिमालय में कई योगियों के दर्शन भाग्यवान पुरुषों को हो जाते हैं। स्वामी माधवतीर्थ जी दण्डी गत वर्ष वहाँ गये थे। उन्हें एक महात्मा मिले। आपने उस घटना को काशी के 'पन्था' नामक बंगला-पत्र में लिखा है, उसका मर्म इस प्रकार है—

"इस शरीर ने गौरीगिरि की परिक्रमा करने के लिए अक्षय तृतीया के दिन काठगोदाम से यात्रा की। शैल पुत्री तीर्थ का दर्शन करते समय वहाँ भी कतिपय महापुरुषों के दर्शन हुए।

यह शरीर गौरी तीर्थ में जिस पर्वत पर गया, वह हिमाचल प्रदेश का एक उत्कृष्ट स्थान है। स्वयं गौरी ने इस पर्वत पर शिव की आराधना की थी। जगत् में ऐसा कोई कवि या कलाविद् पैदा नहीं हुआ, जो हिमाचल के सौन्दर्य को व्यक्त कर सके। केवल यह सौन्दर्य ही तीर्थ यात्रियों की पथ की सारी क्लान्ति दूर कर देता है।

और भी दो एक पहाड़ी गौरी के दर्शन के लिए जा रहे थे। उनसे मुलाकात होने पर इस शरीर ने पूछा कि यहाँ कोई साधु-महात्मा हैं कि नहीं? अगर हैं तो कहाँ पर? उन लोगों ने उँगली का इशारा करके तीन-चार स्थान दिखा दिये। वे सब प्रायः ३-४ कोस की दूरी पर थे। फिर दिखा कर उन्होंने कहा उस पहाड़ पर कभी-कभी एक महापुरुष आकर रहते हैं। जो स्थान समीप में दिखाया, वह भी बहुत ऊँचा था, परन्तु महापुरुष के दर्शन की आकांक्षा अत्यन्त बलवती होने के कारण इस शरीर ने उस पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। वहाँ पहुँचने पर महात्मा के दर्शन मात्र से ऐसा मालूम हुआ कि आप कोई महापुरुष हैं, दिव्य दर्शन हैं।

एक छोटी सी गुफा में वे महात्मा पद्मासन लगा कर बैठे थे। नेत्र बन्द थे, श्वास भी शायद बन्द था। सामने पाँच-छः हाथ की दूरी पर एक सूखा हुआ वृक्ष पृथ्वी पर पड़ा था, उसमें आग लगा दी गई थी। इस शरीर की उपस्थिति की बात शायद महात्मा जी को मालूम नहीं हुई। परन्तु झोला कम्बल रख कर नमो नारायण का उच्चारण करते ही उन्होंने नेत्र खोल कर इस शरीर को देखा और उसी क्षण पुनः नेत्र बन्द कर लिये।

उस समय मध्याह्न का समय प्रायः बीत चुका था। सूर्य देव पश्चिम आकाश में ढल चुके थे। प्रातः काल से पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते शरीर भूख, प्यास से क्लान्त हो रहा था। पर्वत पर पहाड़ियों के घर हैं, परन्तु शरीर वहाँ जाने में अशक्त था। झोला, कम्बल वहीं रख कर, झरने में हाथ मुँह धोकर, अंजुली पानी पीते ही शरीर बहुत कुछ स्वस्थ हो गया। कम्बल बिछा कर गुफा के बाहर आसन लगा कर यह शरीर आराम करने लगा। महात्मा जी के यहाँ भोजनादि का कोई बखेड़ा किसी समय नहीं होता, यह बात उनके सामान को, जो वहाँ था देखने से ही मालूम होती थी। अतएव सहज ही धारणा होगई थी कि वे भोजन नहीं करते। दर्शन तो हुए, परन्तु दर्शन का आनन्द नहीं मिला, क्यों कि वे मौन थे।

अन्य दिनों इस शरीर के झोले में चने का सत्तू और गुड़ रहता था। देव संयोग से यह भी आज नहीं था, अतएव यह निश्चित था कि

आज भोजनादि की कोई व्यवस्था न हो सकेगी। सोचा सन्ध्या के पहले बस्ती में जाने पर जो होगा सो होगा नारायण का स्मरण करते हुए समीप बैठ कर महात्मा के दर्शन करने में समय बिताने लगा उस समय शरीर भूख के मारे व्याकुल था।

जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से बहुत दूरी तक दिखाई देता था। घास चरती हुई गाय जिस तरह स्वाभाविक ढङ्ग से घूमती है, उसी तरह घूमती फिरती एक सफेद गाय महात्मा की गुफा के द्वार पर आकर पीछे के दोनों पैरों को थोड़ा फैला कर खड़ी हो गई। उस समय महात्मा ने नेत्र खोल कर मुस्कराते हुए गाय की ओर देखा। गाय के एक थन से खूब बारीक धार से दूध झरने लगा। यह शरीर जैसे मन्त्र द्वारा चालित हो, इस तरह अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। महात्मा के आसन के पास काठ का एक बड़ा सा पात्र उलट कर रक्खा था। उसे उठा कर उस शरीर ने गाय के थन के नीचे रख दिया, उस समय गाय के चारों थनों से दूध अबाध गति से उस पात्र में झरने लगा। देखते देखते वह भर गया। प्रायः ४-५ सेर दूध होगा, महात्मा के सामने वह रक्खा गया, इस शरीर के साथ जो जल पात्र था वह भी थन के नीचे रक्खा गया। तब महा पुरुष ने 'माई! माई!' कह कर दो बार उच्च-स्वर से पुकारा। उसके क्षण भर बाद हवा का शब्द सुनाई पड़ा, मानों दूर से आँधी आती हो। यह शब्द कहाँ से आ रहा है, कुछ समझ में नहीं आया। क्षण भर बाद मालूम हुआ कि महा पुरुष की नासिका श्वास से बाहर निकल रहा है। देखते देखते उनका स्थूल शरीर अत्यन्त कृश हो गया। इसके बाद उन्होंने दूध का पात्र मुँह में लगाया और सारा दूध चढ़ा गये। इस बीच दूसरा पात्र भी भर गया और वे उसे भी खाली कर गये। पुनः उनका पात्र स्तन की नीचे रक्खा गया और दूध से भर जाने पर वे उसे भी पी गये। इस प्रकार दूध के तीन पात्र वे पी गये। अब दोनों पात्रों का दूध पीने के लिये महात्माजी इस देह को इशारा किया। आदेश होते ही कमंडल का दूध पीलिया गया महापुरुष के पात्र का भी कुछ दूध पिया गया। पेट में और स्थान न रहा। अपूर्व स्वाद था। दूध के ऐसे माधुर्य रस का अनुभव और कभी नहीं हुआ था। असीम तृप्ति हुई। महात्मा के दर्शन से जो तृप्ति आज हुई, उस से शरीर धारण करना पूर्ण सार्थक हो गया। उन के मुख से निकली हुई कोई बात सुनने को नहीं मिली। बहुत देर तक इस आशा में शरीर बैठा रहा संध्या से पहले वे आसन से उठ कर झरने की ओर गये जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से झरने तक अच्छी तरह दिखायी पड़ता था। वहाँ से वे अदृश्य हो गये। किसी ओर दिखाई न पड़े। बहुत खोजने पर भी फिर दर्शन नहीं हुए। संध्या समय बस्ती में जाकर इस शरीर ने आश्रय लिया। दो तीन दिन और दर्शन की चेष्टा की गई। पर्वतीय लोगों ने कहा बीच बीच में वे महापुरुष वहाँ आते हैं। कभी कभी दूसरे पहाड़ पर उनका आसन पड़ता है। जो दर्शन करता है, उसका जीवन धन्य है। नारायण का स्मरण करते हुए बहुत खोज की गई, परन्तु फिर दर्शन नहीं हुए।

—कल्याण

करुणा और प्रेम इन्हीं दो शब्दों में धर्म के सारे तत्व निहित हैं।

× × × ×

जो तुम से बेर करते हैं, तुम उनसे प्रेम करो, तथा सदाचार से रहो और जो निन्दा करते हैं, उनसे प्रार्थना करो।

× × × ×

ईश्वर जो कुछ करता है वह बुद्धि से ही करता है। अपनी इच्छानुसार कोई काम नहीं होता है। यह जानना चाहिए कि जो कुछ होता है, वह अच्छा ही होता है।

स्वरोदय

(श्री० नारायण प्रसाद तिवारी, 'उज्ज्वल')

(गताङ्क से आगे)

दो०-शुक्ल पक्ष है चन्द को, कृष्ण पक्ष रवि केर।
कृष्णपक्ष से तीज तक, रविकी हा तिथि हेर॥
तीन तिथी फिर चन्द्र की, फेरि तीन रवि मान॥
तीन तिथी फिर चंद्रमा, तीन तिथी फिर भान॥
शुक्लपक्ष से तीज तक, तिथी चंद्र की लेख।
ऊपर के परमान सम, जानो बहुत विसेख॥
शुक्लपक्ष की तीज तक, प्रात चंद्र स्वर होय।
पक्ष भरे तक कुशल है, सिद्धि कार्य सब होय॥
कृष्ण पक्ष की तीज तक, सूरज सुर चल जाय।
शुभ कारज उहि पक्षभर, अरु सब कुशल रहाय॥

सो०-चलै जो स्वर विपरीत, हानि दुख भय जानिये।
करिये यह परतीत, पक्ष भरै लौं अशुभ है॥

दो०-बुध वृहस्पति शुक्र अरु, सोमवार दिन चार।
चंदा स्वर को जानिये, शुभ कारज निरधार॥
शनि रवि मङ्गल वार के, जो ये दिन तीन।
सूरज स्वर में जानिये, क्रूर कर्म लौ लीन॥
चंद्र दिनन में चन्द्र स्वर, चलो चही प्रतकाल।
सूरज के स्वर में चले, सूरज स्वर की चाल॥
जो स्वर उलटे चलैं तो, ताको कहौं विशेष।
बुध दिना सूरज चलै, तो विरुद्ध कुछ लेख॥
गुरु वासर रवि स्वर चले, तो कछु राज विगार
शुक्र वार को रवि चल, जिय विपरीत विचार॥

सो०-मन कछु चिंतित होय, सोम जो सूरज स्वर चलै।
अवश हानि कछु होय; बाये स्वर मङ्गल दिना॥

दो०-शनिवार बहे चंद्र जो जिय उदास कछु जान।
रविवार इडा चलै, कष्ट होय यह मान॥
ढाई घड़ी लौं प्रात ही, स्वर को है परमान।
जो प्रमान स्वर ना चलै, दुःख होय अरु हान॥
प्रात समय नित उठत ही, चलित होय स्वर जोय।
सो पग आगे धर उठे, सिद्ध सब कारज होय॥

चन्दा स्वर में दोई पग, सूरज स्वर में तीन।
यहि विधि सगुन विचार नित उठे पुरुष परवीन

सो०-गयो चहै जो कोथ, पूर्व उत्तर की दिशा।
पूरण कारज होय, जो सूरज स्वर में चलै॥

दो०-दक्षिण अरु पश्चिम दिशा, चंदा स्वर में जाय।
तो शुभ कारज जानिये, मन प्रसन्न हुई जाय॥
मेष, सिंह, धन, कुंभ अरु, मिथुन, तुला षटजान
सूरज स्वर की लगन ये, क्रूर कर्म हित मान॥
मकर मीन कन्या वृश्चिक, वृष अरु कर्क विचार
ये लगनें स्वर चन्द्र को, शुभ कारज निरधार॥
कौनें स्वर में कौन सों, चहिये कारज कौन।
वरणत हूं संक्षेप में, गुनिये ह्वै लवलीन॥
चन्द स्वर में कीजिये, थिर कारज शुभ जोय।
चर कारज सिध होत हैं, सूरज स्वर जबै होय॥

सो०-चलत सुखमना होय, हियेमें हरिको ध्यान धर।
कारज कछू होय, करत ही होवे हानि दुख॥

स्वरोदय प्रेमियों से निवेदन।

कई सज्जनों ने मुझे "स्वर योग से दिव्य ज्ञान" नामी पुस्तक पर अपना संतोष प्रद विचार भेजा है, जिसके लिये गताङ्क में मैं राआभ प्रदर्शन कर चुका हूं तथा उस के वाद भी जो पत्र आये उनको भी मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं।

कई सज्जन कुछ शंका समाधान के लिये पत्र भेजते हैं, तथा उत्तर के लिये टिकट या कार्ड भेजते हैं, मैं निवेदन करता हूं कि कोई भी सज्जन सहर्ष शंका समाधान के लिये मुझे लिख सकते हैं, चाहे वे टिकट भेजें अथवा न भेजें यथा संभव उत्तर अवश्य दिया जावेगा।

—उज्ज्वल।

दूसरों से भलमनसाहत का व्यवहार करने वाला एक चमकता हुआ हीरा है। दुनिया को ऐसे मनुष्यों की जरूरत है, जो अपने सभ्य व्यवहार से द्वेष और कलह की आग बुझा कर प्रेम की शीतल सरिता बहावें

दो सरल प्राणायाम

दिन भर काम करने में शरीर का बहुत सा अंश खर्च हो जाता है और उसे थकावट आजाती है, खर्च हुए पदार्थों में से कुछ तो स्थूल होते हैं, जो भोजन आदि द्वारा प्राप्त हो जाते हैं; किन्तु कुछ ऐसे होते हैं, जिनका सम्बन्ध सूक्ष्म लोक से है। यह पदार्थ भोजन से नहीं, वरन् मन की आकर्षण शक्ति द्वारा प्राप्त होते हैं।

कुविचारों और दुर्भावनाओं के कारण मांस पेशियों और नाड़ी संस्थान पर एक प्रकार का तनाव और अनावश्यक खिंचाव पड़ता है, इससे और भी अधिक परिमाण में शक्तियों का ह्रास होता है, तदनुसार मनुष्य मृत्यु को निकट खिंचता जाता है। क्रोध आने से भौंहें तनी रहती हैं. कपट से चहरे के भाव दूसरी तरह के बनाने पड़ते हैं। धोखेबाज लोगों के कंठ पर अधिक खिचाव पड़ने के कारण उनकी वाणी में कर्कशता आ जाती है। धीरे-धीरे यह बाह्य चिह्न आदत का रूप धारण कर लेते हैं और शरीर में स्थायी अड्डा जमा कर बैठ जाते हैं।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के इच्छुकों को चाहिये कि नित्य अपने मन की दुर्भावनाओं को मिटाने और तज्जनित स्नायविक तनाव को दूर करने का प्रयत्न करते रहें। नीचे ऐसे ही दो अभ्यास बताये जाते हैं।

(१) शरीर को ढीला और सम स्थिति में रख कर आसन के ऊपर सुखपूर्वक बैठ जाओ। ठोड़ी को थोड़ा सा भीतर की ओर झुकाओ और मुँह बन्द कर लो। पर दाँतों को भींच कर मिलाने की जरूरत नहीं है। स्थिरता पूर्वक बैठ कर नाक के द्वारा धीरे-धीरे साँस लेना आरम्भ करो और जब पूरी सांस खींच लो, तो ५ सैकिंड उसे अन्दर रोको और फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकाल दो। सांस खींचते समय इस प्रकार की भावना करो कि वायु के साथ पवित्र प्राण तत्व हमारे शरीर में प्रवृष्ट हो रहा है। कुंभक करते समय अनुभव करो कि खींची हुई जीवनी शक्ति शरीर के अंग प्रत्यंगों में व्याप्त होकर उन्हीं में घुल रही है। सांस छोड़ते समय मनन करो कि अन्दर के शारीरिक और मानसिक विष बलपूर्वक खींच कर बाहर फेंके जारहे हैं।

इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि अभ्यास के समय में तनाव कम होता जावे। हर अंग को ढीला ढाला और विश्राम करने की हालत रखना चाहिए। इससे कुविचारों के कारण अवयवों को तने रहने की जो आदत पड़ जाती है, वह छूटने लगती है और शरीर अनावश्यक शक्ति व्यय करने से बच जाता है। पहला अभ्यास कम से कम ४ सप्ताह करना चाहिए, इसके बाद दूसरे अभ्यास का साधन करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।

(२) पूर्वोक्त शिथिलासन पर बैठ कर दाहिने हाथ की उङ्गलियों से नाक का बाँया छिद्र बन्द करो और फिर दाहिने छेद से धीरे-धीरे सांस खींचो। जब पूरी वायु खींच लो, तो अंगूठे से खुले हुए छेद को भी बन्द कर लो और जितनी देर आसानी से वायु रोक सको भीतर रोके रहो। तदुपरान्त दाहिने छेद को बन्द करके बाँए छेद से धीरे-धीरे सांस निकाल दो। अब कुछ देर बिना सांस के रहो और फिर पहले की तरह सांस खींचने, रोकने और छोड़ने की क्रिया दुहराओ। इस प्रकार पांच मिनट से आरम्भ करके आध घंटे तक यह प्राणायाम करने का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। हर क्रिया के साथ शुद्ध प्राण तत्व खींचने, उसे सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होने और विषैले पदार्थों को बाहर निकल जाने की भावनाओं को क्रमानुसार अवश्य दुहराना चाहिए। इसी प्रकार नाड़ियों को पूर्ण रूप से ढीला रखने का ध्यान रखना चाहिये। इस अभ्यास को लगातार करते रहने से मन में उत्तम गुणों का समावेश होता है और बुराइयाँ हटने लगती हैं।

तुम क्या हो? और क्या होगे ?

एक विद्वान का कथन है कि जो अपने को जीव मानता है, वह जीव है और जो अपने को शिव मानता है, वह शिव है। सच मुच हम वैसे ही बन जाते हैं, जैसा कि अपने बारे में सोचते हैं। जो कहता है कि मैं अभागा हूं, मेरे ऊपर बुरे दिनों का फेर है, दुनियाँ मेरे विपरीत है, कोई मेरी सहायता नहीं करता। अवश्य ही उसे उन बातों का सामना करना पड़ता है। चाहे आज इन बातों को बढ़ा चढ़ा कर कहता हो, चाहे आज उस पर वैसी विपत्ति न हो, पर कल जरूर वह सब बात पूर्ण रूप से सत्य होने लगेंगी।

मनोविज्ञान शास्त्र कहता है कि जो बात बार-बार मन में उठती है, वह विश्वास का रूप धारण कर लेती है और विश्वास के आधार पर शरीर एवं मन के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कहा गया है कि— " यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी " जिसके मन में जैसी भावना होती है, वैसी ही सिद्धि मिलती है।

जो मनुष्य अपने ऊपर अविश्वास करते हैं। जिसे अपनी योग्यता और कार्य शक्ति पर विश्वास नहीं, वह न तो कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकेगा और न उसे कहीं कोई विशेष सफलता मिलेगी। मर जाने के बाद मिट्टी की तरह पड़े रहने वाले शरीर की अपनी निजी शक्ति कुछ भी नहीं है। वह तो चैतन्य सत्ता द्वारा प्रभावित होकर काम करता है। यदि तुम्हारी चैतन्य सत्ता निर्बल है, तो बेचारे मृत पिण्ड शरीर से यह आशा नहीं की जा सकती कि उसके द्वारा किन्हीं महत् कार्यों का सम्पादन होगा।

मानव प्राणियों की बनावटें और शारीरिक ढाँचे आपस में मिलते जुलते हैं, उनमें कोई खास फर्क नहीं होता। फिर क्यों एक दूसरे में जमीन आसमान का अन्तर देखने में आता है ? कारण यह है कि एक की मनो-भावनाएं दूसरे से भिन्न हैं। एक सी संपत्ति वाले, एक सी विद्या वाले या एक के शरीर वाले दो मनुष्यों में भी बड़ा भारी अन्तर होता है। उनको अपने विश्वास, विचार और स्वभाव जैसे होते हैं, संसार में उनका आदर उसी दृष्टि कोण से होता है। लोग उनका मूल्य उसी हिसाब से आँकते हैं। शरीर विचारों का दर्पण है। दुष्ट और साधु, दुराचारी और धर्मनिष्ठ, आलसी और उत्साही, सत्य वक्ता और मिथ्यावादी इन भिन्न स्वभाव के मनुष्यों को पहचानना कुछ भी कठिन नहीं है। उनकी सम्पूर्ण चेष्टाएं और सूक्ष्म आकृतियें उसी ढाँचे में ढल जाती हैं। जिसे जरा भी तमीज है, वह आसानी से पहचान सकता है कि कौन मनुष्य क्या है ? और उसका कितना मूल्य है। बनावट अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। कपड़े और आभषणों ने किसी को माननीय नहीं बनाया जा सकता। गुणवान मनुष्य चाहे वह फटे हुए कपड़े ही क्यों न पहने हो पूजा जायगा, वह जहाँ जायगा वहीं अपनी सुगन्ध से लोगों के हृदयों को प्रफुल्लित कर देगा।

वे दरिद्र हैं, जो दरिद्रता के विचार करते हैं, उसी प्रकार वे दुष्ट हैं, जो दुष्टता के विचार करते हैं। तुम क्या हो ? यदि इस बात को जानना चाहते हो, तो आत्म चिन्तन करके देखो कि तुम कैसे विचार करते हो। जिस प्रकार की इच्छा और आकांक्षाएं तुम्हारे मन में उठती रहती हैं, अवश्य ही तुम वह हो। इस समय बाह्य परिस्थियाँ दूसरी भले ही हों, पर निकट भविष्य में तुम उसी ढाँचे में ढल जाओगे। विचार सांचे हैं और जीवन गीली मिट्टी, दोनों एक साथ मिले हुए हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि सांचे में रक्खी हुई मिट्टी पर वैसी ही आकृति अंकित न हो जाय। हम देर सबेर में पूर्णतः वैसे ही बन जाते हैं, जैसा कि सोचते हैं। एक विद्वान् का कथन है कि यदि मुझे मालूम हो जाय कि तुम क्या सोचते हो, तो मैं बता सकता हूँ कि तुम क्या हो और भविष्य में क्या बन जाओगे।

जो जैसा सोचता है वह वैसा ही है या हो जायगा इसलिये तुम जैसे बनना चाहते हो, वैसे ही विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान देना आरंभ कर दो।

शिखा के लाभ

(वि० रामस्वरूपजी 'अमर' तालबेहट)

(४) (जून के अङ्क से आगे)

पुरुषों के क्यों बाल विशेष होते हैं. और स्त्रियों के क्यों कम होते हैं ? इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों की राय है कि—स्त्री और पुरुष के जीवन में जिस समय युवावस्था का आगमन होता है. उस समय पुरुष शक्ति का विकास मुख, छाती इत्यादि स्थानों से होता है यानी पुरुषों की छाती और मुखादि अङ्गों पर केश उगने लगते हैं, लेकिन स्त्रियों में इन स्थानों पर बाल का उगना नहीं देखा जाता है। स्त्रियों की शक्ति का विकास मासिक ऋतु धर्म, स्तनों में दुग्धागमन और जरायु की वृद्धि द्वारा होता है। उनके नाम अँग्रेजी में क्रमशः "केटेबॉलिक" और 'एजे बॉलिक' है। इन्हीं दोनों भेदों से स्त्री पुरुषों की प्रकृति में विशेष अन्तर पाया जाता है। पुरुष स्वयं क्रियाशील और अपनी सहचरी की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाला तथा दूसरों के लिये अपनी शक्ति का ह्रास करने वाला है। लेकिन स्त्रियों में स्वयं क्रियाशीलता नहीं है। वे अपने सहचर के लिये निश्चेष्ट होकर मार्ग प्रतीक्षा करने वाली होती हैं। अपनी शक्ति को वे अन्तःस्थिर ही रखती हैं, पुरुषों में क्रियाशीलता होने से ज्ञान विज्ञान के विषयों में अधिक प्रवेश कर सकते हैं और कर भी जाते हैं। उनके मस्तिष्क में वाह्य संसार के संस्कार बहुत जल्दी प्रविष्ट हो जाते हैं। इसी से वे विचार धारा पर चलते-चलते अपने सिद्धान्त की सिद्धि पर पहुँच जाते हैं। किन्तु स्त्रियों में स्वकर्तृत्व न होने से उन्होंने धैर्य का बाहुल्य रहता है, इसी से वे अपने विश्वास पात्र मनुष्य पर अपनी आत्मा स्वयं खुशी रख देती हैं. यानी उन्हें अपने आन्तरिक विचारों के बताने में अपने प्रेमी से कोई दुराव नहीं होता है। इसी से उनमें पुरुषों के बनिस्बत प्राकृतिक प्रेरणा और मनोवेग ज्यादा पाया जाता है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष के स्वभाव में भेद देखा और पाया जाता है। यह विषय केश निर्गमन के संबन्ध में है जब यौवन विकास के साथ ही साथ केश वृद्धि का सम्बन्ध है, तब जिस प्रकार किसी वृक्ष की शाखा के काट डालने पर उसमें नई शाखाओं के निकलने का वेग बढ़ता है, ठीक उसी तरह ही प्रतिदिन या बारम्बार बाल बनवाने से या हजामत कराने से आन्तरिक काम शक्ति का आविर्भाव स्नायुओं में प्राचुर्यता के साथ होता जाता है इसी से तो ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी आदि पुरुषों के लिये केश धारण विधि शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है। केश-वृद्धि से ही काम सम्बन्धी नसों की शक्ति को स्वाभाविक ह्रास होता है। मनुष्य इसी से सहज में ही संयमी बन सकता है। संन्यासी कुटीचक और बहूदक अवस्थाओं का अतिक्रमण करके जब 'हंस" अवस्था पर पहुंच जाता है. तब 'सोऽहम्' भाव में उसे काम विषयक चिन्ता ही नहीं रहती है। इसी से दण्डी संन्यासी केश मुण्डन करा लेते हैं। गृहस्थ दशा में सम्पूर्ण बालों का रखना असंभव सा है इसी लिये तो "गोखुर" के बराबर शिखा मस्तक पर रखवा कर बाकी के बालों को मुण्डन कराने की शास्त्रों में आज्ञा दी गई है। इसमें भी बहुत लाभ है। इतनी शिखा के रखाने से शिर के अग्र भाग और पीछे का थोड़ा थोड़ा भाग क्रमशः ढका रहता है। यहाँ मस्तक के ऊपर शिखा कहलाती है। योग शास्त्र के सिद्धान्तानुसार शिर पर ब्रह्मरन्ध्र और ब्रह्मरन्ध्र के बराबर सहस्रदल कमल में परमात्मा का केन्द्र स्थान है और डाक्टरों के सिद्धान्त से शिर के उस शिखा भाग में Brain Cell या मस्तिष्क भाग में काम का स्थान यानी केन्द्र है। इस लिये इन दोनों अंशों में शिखा रहने से पूर्व लेखानुसार आत्मिक शक्ति स्थायी बन जाती है। तथा चिन्ता शक्ति दबी रहती है, यह निश्चय है।।

हम सुन्दर कैसे बनें?

जैसे स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये भीतरी और बाहरी नियमों को पालन करने की आवश्यकता है, वैसे ही सौन्दर्य के लिए दोनों प्रकार की आवश्यकता है। प्रेम भावना और सौन्दर्य की दृष्टि होने से आत्मा का स्वाभाविक सौन्दर्य-स्रोत फूट निकलता है, अब हमें बताना है कि सौन्दर्य के वाह्य साधन क्या हैं ? वैसे तो स्वास्थ्य ही सौन्दर्य है। तन्दुरुस्त आदमी हमेशा खूबसूरत मालूम पड़ता है। जब शरीर और मन, अनावश्यक भारों से मुक्त होकर हलका हो जाता है, तो दवी गुण उसमें ऊपर झलकने लगते हैं। कीचड़ में पड़े हुए लकड़ी के टुकड़े जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं, किन्तु जब कीचड़ हट जाती है और स्वच्छ जल में वे रहते हैं, तो फिर गढ़े नहीं रहते. वरन् सतह पर ऊपर आकर तैरने लगते हैं। काँच की खिड़कियों पर से जब गर्द गुबार हट जाता है और वे स्वच्छ कर दी जाती है, तो सूर्य का प्रकाश उनमें होकर आर पार जाने लगता है। निर्मल शरीर और मन में होकर आत्मा की ज्योति जगमगाने लगती है, यही श्रेष्ठतम सौन्दर्य है।

सफाई सौन्दर्य की अग्रदूती है। मन की सफाई से आत्म-ज्योति के ऊपर पड़े हुए पर्दे हट जाते हैं। बाहरी सफाई से वे खिड़कियां स्वच्छ होजाती हैं, जिनमें होकर इस जगमग ज्योति के दर्शन होते हैं। मन के साथ शरीर को भी निर्मल रखना चाहिये। क्योंकि मलीनता ही कुरूपता है। तुम्हारे शरीर पर कहीं भी मैल जमा न होना चाहिये। रोज स्नान करो और खुरदरे तौलिये से चमड़ी को खूब अच्छी तरह रगड़ डालो, ताकि पसीने का मैल और बाहर से उड़ कर जमा हुई धूलि कहीं भी लगी हुई न रह पावे। जहाँ कुछ छिपने का स्थान मिलता है, वहाँ चोर की नांई मैल छिप बैठता है, इसलिये छिपने के स्थानों पर तीव्र दृष्टि रखो। गुप्त अङ्ग सदा छिपे रहते हैं, इसलिये हम उधर। ध्यान नहीं देते। चोर को तो वही जगह चाहिए, जहाँ कोई देखता न हो। इसलिये जंघाओं के आस पास कोई भी जगह बिना अच्छी तरह साफ किये न छोड़ो। बगलें भी छूट जाती हैं, फल स्वरूप उनमें एक प्रकार की गंध आने का रोग हो जाता है। उन्हें खूब रगड़ रगड़ कर धो डालो। बालों की जड़ों में मैल को छिपने की जगह मिल सकती है, इसलिये शिर को खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर साफ करो, ताकि कहीं जरा भी मैल न छिपा रहे। नाक, कान में भी कोई खुरट जमा न रहने चाहिये। दाँतों की सफाई तो सब से बहुमूल्य है। यदि दांत गंदे हैं, तो उनमें विष अवश्य जमा होगा, यह विष सांस के साथ पेट में जाकर बड़े उपद्रव पैदा करता है। दाँतों की गंदगी बढ़ कर जब पायेरिया का रूप धारण कर लेती है और पीप निकलने लगता है, तब तो मुँह से बड़ी बुरी बदबू आती है और वह पीप भोजन के साथ मिल कर उसे जहरीला बना देता है। इसलिये नित्य दाँतों को माँजो और भोजन के उपरान्त अच्छी तरह कई बार कुल्ला कर डालो, जिससे कि अन्न का एक भी कण दांतों की जड़ में जमा न रहे और सड़ कर कोई रोग न पैदा कर सके। शौच जाते समय मल मूत्र की इन्द्रियों को शीतल जल से अच्छी तरह धो डालो, ताकि अशुद्धता का लेश भी वहां न रह जावे। पेट में भीतर मल जमा हो गया हो कोष्ठ बद्ध हो, तो तुरन्त ही उसकी सफाई करने का प्रयत्न करो। शरीर में भीतर बाहर सर्वत्र निर्मलता रहनी चाहिये।

कपड़े अधिक मूल्यवान या रंग-बिरंगे पहनने की कोई जरूरत नहीं है। मामूली हलके कपड़े पहने जा सकते हैं, परन्तु वे रहें बिलकुल साफ। यदि तुम्हारे पास पैसा है, तो धुलाई का खर्च बढ़ा दो। स्नान करने के बाद रोज नया धुला हुआ कपड़ा पहनो। यदि पैसे की कमी है, तो अपने हाथ स्नान के बाद रोज अपने कपड़े साबुन से साफ करो। जो कपड़े शरीर को छूते हैं, वह तो

जरूर ही नित्य धुलने चाहिए। सोते समय बिस्तर के ऊपर चादरा बिछाओ जो जल्दी-जल्दी धुलते रहना चाहिए। जाड़े के दिनों में रुई का लिहाफ या कम्बल ओढ़ो तो उसके नीचे भी चादरा लगा लो क्यों भारी लिहाफ एवं कम्बल न धुल सकें तो वह चादरा जरूर ही धुलता रहे।

टीम-टाम के बीस उपायों की अपेक्षा उपरोक्त दो बातें ही कई गुनी मूल्यवान हैं। आज ही अपने शरीर को इञ्च इञ्च जगह रगड़ रगड़ कर अच्छी तरह साफ़ कर डालो और बिलकुल साफ़ धुले हुए कपड़े पहन कर दर्पण में मुँह देखो, तुम्हें मालूम पड़ेगा कि कल की अपेक्षा आज सुन्दरता ठीक दूनी हो गई है। इस क्रम को यदि नित्य नियम में आदत की तरह ले आओ तो देखोगे कि कुछ ही दिनों में तुम्हारी सुन्दरता कितनी बढ़ जाती है। तुम्हारे प्रयोग में जो वस्तुएं आवें वह भी साफ़ सुथरी रहनी चाहिए। पलंग, बिस्तर, कुर्सी, मेज, दवात, कलम, पुस्तकें, अलमारी, कमरा, बर्तन, घर, सवारी सब में सफाई का ध्यान रखो। तुम देखो कि जो वस्तु गंदगी के कारण मलीनता लिए हुए कुरूप अवस्था में पड़ी थी, वही सफाई होने के साथ दूसरे ही रूप में चमक उठी। इस सिद्धान्त का मूल मत है कि मलीनता ही कुरूता की जननी है। जो वस्तु भद्दी मालूम पड़ती हो, जान लो कि इसमें कहीं न कहीं मैल जमा हो गया है। चाहे कोई वस्तु कितनी ही बुरी क्यों न हो, उसकी सफाई हो जायगी तो उसकी आत्मा निखर जायगी और उसमें भी भीतरी प्रकाश चमक उठेगा।

जब तुम सफाई का सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हो और उसे कार्य रूप में परिणित करना आरंभ कर देते हो तो उसी क्षण से सुन्दर बनना आरंभ कर देते हो। अब अपनी सुन्दरता पर विश्वास करने लगो। विद्वानों द्वारा कलाकार की सौन्दर्य दृष्टि से विश्व की प्रत्येक वस्तु को सुन्दर देखने का उपदेश किया गया है, उसका प्रारंभ अपने घर से ही होना चाहिए। अपने अङ्ग-अङ्ग को सौन्दर्यमयी दृष्टि से देखो। एक बड़ा सा दर्पण लेकर बैठ जाओ और उसमें अपने चेहरे का एक एक अङ्ग, नाक, कान, आँखें, भवें, गाल, होठ, दाँत ध्यानपूर्वक देखो और उन पर सौन्दर्य की दृष्टि डालो। विश्वास करो कि उनकी मलीनता हट गई है और स्वच्छता के साथ सौन्दर्य की ज्योति जगमगाने लगी है। दिन में कई कई बार दर्पण देखो और हर बार अपने अङ्गों पर पहले की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य की दृष्टि डालो। ज़रा सा मुसकराओ और देखो कि तुम्हारी मुसकराहट में कितना अपूर्व सौन्दर्य छिपा हुआ है। अपनी मुसकराहट पर मुग्ध हो जाओ। मानो तुम्हारी मुसकराहट में आज ही विश्व वशीकरण का अमृत परमात्मा ने घोल दिया है, मानो आज ही यह बहुमूल्य नियामत तुम्हें मिली है। मुसकराओ! अपने सौन्दर्य पर, अपनी मुसकराहट पर, मुसकराहट में मिले हुए अमृत पर, परमात्मा की महती अनुकम्पा पर खूब मुसकराओ। जब फुरसत मिले तभी मुसकराओ, इतना मुसकराओ कि तुम्हारा जीवन ही प्रसन्नता की मधुर मुसकराहट के सांचे में ढल जाय। तुम्हारे होटों से फूल बरसने लगेंगे।

अपने सौन्दर्य पर विश्वास करने से सचमुच मनुष्य सुन्दर बन जाता है। वेश्याओं के सभी कार्य कुरूपता उत्पन्न करने वाले होते हैं, परन्तु वे हर वक्त मन में अपने सौन्दर्य का चिन्तन करती रहती हैं, सौन्दर्य का बनाव संभाल पर उनका विशेष ध्यान रहता है, फल स्वरूप ब्रह्मचर्य के अभाव और स्वास्थ्य के निर्बल होने पर भी वे सुन्दर बनी रहती हैं। इसके विपरीत हमारे घरों में जो स्त्रियाँ सौन्दर्य पर ध्यान नहीं देतीं वे वेश्याओं की अपेक्षा अनेक गुनी सुन्दर होने पर भी उतनी आकर्षक नहीं रहतीं। नाटकों में स्त्रियों का पार्ट खेलने वाले नट बहुत उम्र तक सुन्दर बने रहते हैं। इसके विपरीत अपने को बुजुर्ग कहाने को उत्सुक बहुत जल्द बुड्ढे हो जाते हैं।

थियोडर पार्कर

विद्वान थियोडर पार्कर का नाम शायद आपने सुना होगा। उसका पिता बहुत गरीब था, इस लिए उसे बचपन से ही कठिन परिश्रम में जुतना पड़ा। वह हल चलाते समय अथवा घास खोदते वक्त भी अपना पाठ याद करता रहता। जब मौका मिलता पुस्तकें पढ़ने बैठ जाता। किताबें खरीदने को भला वह पैसा कहाँ पाता ? इसलिए दूसरे लड़कों की खुशामद करके उनकी फटी पुरानी किताबें माँग लाता। एक पुस्तक की उसे बहुत सख्त जरूरत थी, परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वह कहीं मिल न सकी। एक दिन उसे एक उपाय सूझा। रात को चुपके से उठ कर जङ्गल में गया और जंगली बेरों को तोड़ तोड़ इकट्ठा किया और उन्हें बोस्टन नगर की हाट में बेच आया। इन्हीं पैसों से उसने वह पुस्तक खरीद ली। एक दिन पार्कर ने बड़ी विनय के साथ पिता से प्रार्थना की कि- क्या आप मुझे एक दिन की छुट्टी दे सकते हैं ? गरीब पिता ने अपने छोटे बालक की ओर आश्चर्य से देखा। उन दिनों उसे खेती का बहुत काम करना था। फिर भी पिता बालक की याचना को अस्वीकृत न कर सका उसने स्वीकृत सूचक शिर हिला दिया।

बालक बहुत सवेरे उठा और पाँच कोस पैदल चल कर हार्वर्ड कालेज में जा पहुंचा। उसने वहाँ अपना नाम लिखाया और खुशी खुशी शाम को घर वापिस लौट आया। उसने घर आकर अपने कालेज में प्रवेश होने की बात बताई। पिता बालक के प्रयत्न पर प्रसन्न हुआ, पर आर्थिक चिन्ता की रेखा उसके चहरे पर झलक आई। बालक उसे ताड़ गया। पार्कर ने कहा पिता जी आप चिन्ता न कीजिये, मैं न तो आपका काम करना छोड़ूंगा और न खर्च के लिए पैसे माँगूंगा। मैंने कालेज में इस शर्त के साथ नाम लिखाया है कि घर पर पढ़ता रहूँगा और अन्तिम परीक्षा में बैठ कर सनद ले लूँगा। पिता की आँखें छलक आईं। यह बालक कठोर परिश्रम कर पिता का हाथ बटाता और इधर उधर से पुस्तक इकट्ठी करके पढ़ता। अन्त में यह महापुरुष अपने देश का उज्ज्वल रत्न साबित हुआ।

पूजा या नित्य नेम

(श्री० रामदयाल जी गुप्त, नौ गढ़)

पूजा वास्तव में वही कही जा सकती है, जिस के करने से मन में सिवा भगवत चिन्तन के और ख्याल पैदा न होते हों। मनमें ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही और उस प्रेम में समय का कुछ ख्याल न हो। अलावा इसके पूजा करते समय किसी बात का संकोच पैदा न हो अर्थात् यह ख्याल न हो कि मुझे कोई देख ही नहीं रहा है। ऐसा ख्याल आने से पूजा में त्रुटि अवश्य पड़ जाती है। मतलब यह कि भगवत-उपासना करते समय मन में सिवाय भगवत् चिन्तन के और कुछ ख्याल ही न पैदा हो अथवा पैदा हो भी तो वह चिन्तन के समक्ष तुच्छ प्रतीत हो।

नित्य नेम इसे कहा जा सकता है कि मनुष्य प्रथम मन की प्रेरणा से उपासना करना शुरू करता है। कुछ दिन ठीक तौर पर करने के उपरान्त मन में इसके प्रति फिर आलस्य आ जाता है, तथा उपासना छोड़ने की भी इच्छा हो जाती है। परन्तु फिर किसी कारण उसको न छोड़ किसी रूप में निभाते चलना मन में स्थिर करता है ऐसी हालत में मन में वास्तविक श्रद्धा नहीं रहती और वह उपासना किसी बात का नियम कर लेने के बतौर एक नियम बन जाती है। ऐसी हालत में मन से श्रद्धा हटती जाती है और फिर उपासना जल्दी से जल्दी खतम करने का ख्याल बना रहता है। ऐसी पूजा को मैं 'नित्य नेम' समझता हूं।

श्रद्धा सहित पूजा दो घण्टे की बजाय आध घण्टे ही अति उत्तम होती है। परन्तु बेश्रद्धा इतनी उत्तम नहीं होती। वैसे नाम लेना तो हर हालत में उत्तम है, परन्तु श्रद्धा सहित नाम लेने से मन में जो आनन्द प्रतीत होता है वह बिना श्रद्धा के नहीं।